

। पुस्तक प्रकाशन में सहायक नामावली ।

रुपये	नाम
५१)	श्रीमती जसकुँवर बाई
४१)	„ प्रभावती बाई
२५)	„ दौलत बाई
१६)	„ मोतियां बाई
१२)	„ दाखां बाई
११)	श्रीयुत रामलालजी लुणिया
१०)	श्रीमती केसर बाई
५)	„ लहर बाई
५)	„ जतन बाई
५)	„ प्रेम बाई
५)	„ रतन बाई
५)	„ हेमजी बाई
४)	„ सोहन बाई
४)	श्रीयुत चिन्तामणजी की माता
४)	„ केसरीमलजी लोढा
२)	„ भँवरमलजी की माता
२)	श्रीमती सूरज बाई
१)	श्रीयुत मांगीलालजी कोठारी

ये ज्ञान भक्ति करने वाले भावुक धन्यवाद के पात्र हैं

(क)

धन्यवाद

प्रस्तुत पुस्तक की जिल्द बंधाई के लिये बीकानेर निवासी
धीपुत लूणकरणजी सोनावत की धर्मपत्नी श्रीमती छोटीबाई ने
नवपद ओली तप के उद्यापन में ज्ञानभक्ति के लिये ५०) रुपये
दिये हैं अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं ।

संकेत—

श्रीहरिसागर जैन पुस्तकालय
जाटाघास मु० लाहाष्ट (मारवाड़)



(स)

शुद्धाशुद्धि पत्रक

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	१८	रेभ्यर्षं	रेभ्यर्षं
७	६	जीतनेपाला	जीतनेपाला
२४	८-९	भाप्यगित भापसे भपमान करने घोल }	भाप्यगितक भापसे भपमान करने घाले }
४०	१	बधलाइट	बंघलाइट
४०	९	मडोग्यला	मडोग्यला
४०	१७	"	"
४१	७	दाने दशो	दाने दशो
४३	१०	शाग्न हपि	शाग्न हपि
४३	१२	भनग्नरा	भनग्नरा
४८	१३	प्रशंशनीय	प्रशंशनीय
४८	१६	अग्निपर्णा	अग्निपर्णा
५०	१४	इतिविमिडिबन	इतिविमिडिबन
६६	६-७	'माविदैः'	'माविदैः प्रस्तुते'
७१	१०	सुदृष्ट्यातन्विता.	सुदृष्ट्यातन्विताः
८३	१६	भं	भंय भं
८६	७	बही	भंय बही
८७	१०	सुनिविद्यनया	सुनिविद्यनया
८७	१७	प्रार्थी संद	प्रार्थी गिर
८७	१८	: शुद्धि	: शुद्धी
१०७	६	इत्यणामिध	इत्याणामिध

लेखिका के दो शब्द

निर्ग्रन्थ प्रवचन में प्रश्न और उत्तर रूप में परमात्मस्तव स्तुति रूप मङ्गल करने वाले मध्यात्म्याओं के लिये फल निर्देशात्मक यह ग्रन्थ मिलता है, यथा—

प्र०—थय-थुइमंगलेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—थय-थुइमंगलेणं जीवे नाण-दंसण-चरित्त-घोहिलाभं जणयइ । नाणदंसणचरित्तघोहिलाभं संपद्येणं जीवे अंतकिरियं—कप्पविमाणोवयत्तिगं आराहणे आराहइ । (उत्तराध्ययन—२९ अध्यायने) ।

प्र० हे भगवन् ! स्तुति करने योग्य परमेश्वर परमात्मा के स्तवन—स्तुति मंगल से जीव क्या पैदा करता है ? । उ०—स्तवन स्तुति मंगल के करने से जीव ज्ञान दर्शन चाग्नि और बोधिल्लाभ को प्राप्त करता है । ज्ञान-दर्शन-चाग्नि और बोधिल्लाभ से मरपक्ष वह जीव कर्मों का अन्त कर देता है, अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है, अथवा—रूपान्तर, देवलोक की प्राप्ति को सिद्ध करता है ।

इस सूत्रमें भगवान्ने परमात्मा की स्तुति को अध्यात्मिक उन्नति का परम माधन अर्थात् असाधारण कारण फरमाया है, परमात्मा के गुणानुवाद आत्मीय गुणों के आवरणों को दूर करते हैं। गुणानुवाद भी सांसारिक स्वार्थों को लेकर और परमार्थ को लेकर दो प्रकार से किये जाते हैं। परमात्मा के गुणानुवाद केवल परमार्थ से ही किये जाते हैं। महात्माओं के हृदयोंमें से परमात्म मन्वन्धी जो गुणानुवाद प्रकटते हैं, वे सुननेवालों की ज्ञानेन्द्रियों में ज्ञानामृत का अमोघ मिचन करते हैं। महात्माओंकी स्तुतियों के पद पद में क्या ? वर्ण वर्ण में इतनी ताकत रहती है, जो मोड़ हुई आत्मा को सहज में जगा देती है। संसार के त्रिविधताप संतप्त प्राणियों को शान्ति देनेवाली यदि कोई चीज़ है तो—महात्माओंकी की हुई परमेश्वर की स्तुतियाँ ही हैं।

उन्नीसवीं शताब्दीमें होनेवाले परमोपकारी-सुविहित शिरोमणि पृथ्वीवाट प्रानः स्मरणीय महामहोपाध्याय श्री श्री १००८ श्री क्षमा कल्याणकर्त्री महाराज एक अद्वितीय विद्वान् महात्मा थे। आपने संस्कृत-शास्त्र और देशी भाषा में अपनी महा-महिमशालिनी मेधासे आविष्कृत किये हुए कई नये ग्रन्थ रत्न भारती भैया के महाभण्डार में भेंट किये हैं। उनमें 'त्रैलोक्य प्रकाश को करनेवाली सार्वकलाश 'त्रैलोक्यप्रकाशाख्याजिन-चन्यवन्दन चतुर्विंशतिका'-एक अमन्य रत्न है। वर्तमान

जैन संप्रदाय में—संस्कृत जिन चैत्यचन्दन चौबीसियों में यदि किर्मी को विशेष महत्व मिला है, तो उर्मी—चौबीसी को मिला है । इसमें कारण यही है कि संस्कृत उर्मी विकट भाषा में भी प्रभुके गुणानुवाद पृज्येश्वर महामहोपाध्यायजीने इतनी सरलता से किये हैं, जो पुन विज्ञान के साथ बोलने पर परमानन्द का साक्षात्कार करा देने हैं ।

संस्कृत को नहीं जाननेवाले हिन्दी-भाषा-भाषी इसमें निरूपित परम तन्त्रों का यथोचित लाभ प्राप्त कर सकें । इसके लिये—शक्ति के न होने पर भी रत्नरत्नगच्छाधिपति श्रीमज्जन-हरिभागवतगीर्णधरजी महागज माह्व की आज्ञानुयायिनी पृज्यवर्या गुरुवर्या—श्रीमती दयाश्रीजी महाराज माह्व की सतत प्रेरणा से प्रेरित हो मैंने यह अनुवाद लिखने का प्रयत्न किया है । यह मेरा पहला प्रयास है, कई प्रकाश की पुष्टियों का होना सम्भव है । दयालु—सज्जन पाठक पुष्टियों का ग्रहण न करने हुए माग्शी बनेंगे उर्मी आशा रखती हूँ ।

इस अनुवाद में पृज्येश्वर आचार्य द्वारा लिख्य ग्लान कवि-पर धाकरीन्द्र माग्गी महागज माह्व न यथासाध्य सहायन करने की कृपा की है । अन्त में आपकी आज्ञासिद्धि है । इस पुस्तक के प्रकाशन में गुरुनाथ—अजमेर के बदाल आचार्य सदाने जो उन्माह और प्रेम प्रकाशित किया है वह बरि बरि प्रशंसा के पात्र है ।

हिन्दी संगार को यह अनुवाद-सूत्र अपनी अकिंचन भेट समर्पित करती हुई-सूत्रालनाओं के लिये क्षमा औ नवे माहित्य के नवमर्जन में प्रेरणा को चाहती हैं ।

आर्या बुद्धि

लाखन कोटडी (अजमेर)

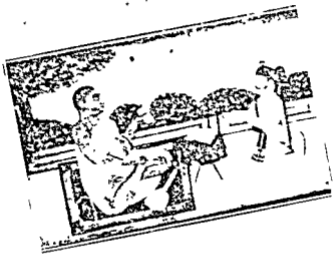


* अहं नमः *

महामहोपाध्यायश्रीक्षमाकल्याणकजी का संक्षिप्त परिचय



प्रस्तुत चैत्यवन्दन चतुर्विंशतिका के निर्माता पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय सुगृहीत नामधेय महामहोपाध्याय श्रीमत्क्षमाकल्याणजी महाराज उन्नीसवीं शताब्दी के जैन शासन में स्तम्भभूत प्रवचन प्रभावक-महाज्ञानी-महासंयमी-गीतार्थशिरोमणि महात्मा थे । सूर्योदय के होने पर उसके प्रकाश से सब कोई लाम उठाते हैं किन्तु अरुणोदय के पहले सूर्य कहां था ? क्या था ? इसका ज्ञान प्रायः किसी को नहीं होता । महात्मा रूप से प्रकाशित होने से पूर्व हमारे इन चरित्र नायक के विशिष्ट जीवनचरित्र





इस प्रकार हमारे चरित नायक का जन्म संवत्-जन्मधाम वंश-गोत्र का कुल परिचय योधपुर निवासी कविराज आशुकवि श्रीनित्यानन्द शास्त्री के-बनाये हुए * श्रीक्षमाकल्याणचरित में से मिलता है ।

॥ गुरु परम्परा ॥

जिनकी शिष्य सन्तति वर्तमान में जैनधर्म की प्रभावना कर रही है, उन अपश्चिमातीर्थकर भगवान् श्रीमन्महावीरदेव के पांचवें गणधर श्री सुधर्मास्वामी की पट्टपरंपरा में कौटिकगण चन्द्रकुल वज्रशाखा और चैत्यवासियों को वाद में सद्दान्तिक खरतर युक्तियों से जीतने पर खरतर मुविहित संयम की आराधना करने से गुर्जर देशाधिपति श्री दुर्लमराजाधिराज द्वारा वि० सं० १०८० में खरतर विरुद्ध को प्राप्त करनेवाले श्रीवर्द्धमान सूरिजी के पट्टशिष्य ४० वें पट्टधर श्रीजिनेधर सूरिजी के पाटानुपाट में ६७ वें पट्टधर श्रीजिनभक्तिसूरिजी महाराज हुए । आपके मुख्य शिष्य तत्कालीन यति मम्प्रदाय में बढ़ते हुए सिधिलाचार का विरोध करनेवाले मुविहित परम्परा के प्रचारक परम संवेगी-श्रीप्रीतिमागरजी महाराज ६८ वें पट्टधर हुए ।

* लेखक महोदय ने इस चरित का परिचय महामहोपाध्यायजी महाराज के पौत्र खले धी सुमति मण्डनोपाध्याय प्रसिद्ध नाम धी सुमनजी महाराज ने धार यीकानेर के मण्डारों से यही शोध खोज के बाद आलेखित किया था ।

आपके पट्टशिष्य ६९ वें पट्टधर वाचनाचार्य श्री अमृतधर्मजी महाराज ही हमारे चरितनायक के आदि प्रतिबोधक गुरु देव थे ।

॥ विद्याभ्यासः ॥

श्री राजसोमाद् विमलेन चेतसो—

पाध्यायतांऽसौ पठितुं प्रचक्रमे ।

नित्यं पठन् ससदशोन्मितै र्वर्भा,

श्रीमान् सतीर्थैः किलसंयमेरिव ॥ १४ ॥

खरतरगच्छ की श्री क्षेमकीर्ति शास्त्रामें १८ वीं शताब्दी में उपा० श्रीलक्ष्मीवल्लभजी हुए उनके गुरु भ्राता वाच० गोमहर्षजी के शिष्य वाच० लक्ष्मीमसुद्रके शिष्य उपा० कर्पूरश्रियजी के शिष्य प्रौढ विद्वान् महामहोपाध्याय श्रीगजमोम जी महाराज के पास हमारे चरित नायकने निर्मल चिन्तने विनयपूर्वक मत्तह प्रकार के संयम भेदों के जैमे मत्तह महाध्यायियों के साथ लक्षण-न्याय-आगम आदिकों का पठने हुए अद्वितीय विद्वत्ता प्राप्त की थी । महामहो० श्रीगज मोषजी के जैमे उर्मा शारदा के संस्कृत प्राकृत और गजम्धानी आदि भाषाओं के विशिष्ट कवि मर्मज्ञ त्रिगोमणि उपा० रामविजयजी प्रसिद्ध नाम श्री रूपचद्रजी मे भी आपने अच्छी योग्यता हासिल की थी ।

❁ बुद्धि वैभव ❁

× किसी समय में श्रीराजसोमजी के पास अपने सतरह सहपाठियों के साथ हमारे चरित नायक पढ़ रहे थे । उस समय काशी का एक विद्वान् वहां आया, और किसी उत्तम शास्त्र की चर्चा से सब छात्रों को परास्त कर दिये । उस समय कोई आकाश की ओर देखने लगा, कोई अध्यापक के मुंहको ताकने लगा, तो कोई भूमीको कुरेदने लगा, और कोई अपनी पुस्तक को देखने लगा, उस समय निर्भयमिंह के जैसे संस्कृत भाषा में गर्जना करते हुए अपनी अकाट्य युक्तियों से उद्दण्ड हाथी के जैसे उस पाण्डित को बड़ी खुबी के साथ हमारे चरित नायक ने जीत लिया । हमारे चरित नायक अपने समय में अद्वितीय विद्वान् माने जाते थे ।

॥ नव साहित्य सर्जक ॥

हमारे चरित नायक व्याकरण-न्याय-काव्य-साहित्य आदि में सर्वोपरि थे इतना ही नहीं बल्कि जैनागमों के गूढ़

× छात्रेषु सर्वेषु पठन्तु जातुचिद्-धाराणसेयां विबुधः समायया ।
छात्राः समं मद्भुपराइमुर्धाकृता-स्तेनैकैककोत्तम शास्त्रचर्चया १५
छात्रेषु कल्पव्यलोकयन्सुख-मन्येषु पश्यन्तु च पाठकाननम् ।
भूमि नम्राप्रार्थितिलन्तु केपुचिद् उष्टं तथेच्छस्यपंगु पुस्तकम् १६
निर्भयण मिह इवांमुख शमा-कल्याणक. संस्कृत गजिनं दधम् ।
उद्दण्डगुणहार मिषानु पण्डित-स्यस्यगिगजिगंय इत्यमलितोक्तमुक्तिभि

गण्यों को बचत करने के लिये भी समाचारण गीतार्थ थे । अनेकों विद्वान् अपने घरों या गण्टेरों का समाचारण करने करते थे । गण्डनायक, आचार्य भी आपकी गीतान्वित गण्ठियों को बहुत मूल्य समझते थे । अन्य गण्ठों और गण्ठकारों की यतियों ने आपके पास विद्याभ्ययन कर पाण्डित्य प्राप्त किया था—जसा गण्ठीय रीतिविज्ञयजीपतागज अपनी कृतियों में—' त्रिन-
उलय-बन्ध्याणक, द्विने पद्मविज्ञय गुणगायत्री '—इत्यादि में विद्यागुरु के नाम स्मरण करते हैं । प्रभोत्तमार्द्धप्रलक के अतिरिक्त आपके लिखित गण्ठों छूटकर प्रभों के उतर रीकाने के सहिमाभिन, अन्य भण्डार आदि में विद्यमान हैं । कई प्रश्न तो इतने अटिन् और विशागर्णीय होते हैं कि उनके समुचित उत्तर देनेवाले बहुत कम मिलेंगे ।

॥ आपके रचित ग्रन्थों की सूचि ॥

- | | |
|----------------------------|-----------------------------|
| १-गुधात्तु वृत्ति | ७-गुन्त. श्यावली वृत्ति: |
| २-शौतर्माय काव्य वृत्ति | ८- प्रभोत्तम मार्द्धप्रलक |
| ३-शानुमारिक. व्याख्यानम् | (भाषा में और संस्कृत में) |
| ४-गण्ठ गण्ड. वृत्तपट्टावली | ९- तीरविचार वृत्ति |
| ५-शायर. शोध विधिप्रकाश | १०-शब्द स्तवावली |
| ६-शायर. नापट | ११-सम्बन्ध चरित्रम् |

१२-तर्क संग्रहकविका

१३-चैत्यचन्दन चौविर्मा

(३-संस्कृत में १-भाषा में।

१४-विज्ञान चन्द्रिका

१५-अष्टाद्विका व्या०

१६-मेरुत्रयोदशी व्या०

१७-अक्षयतृतीया व्या०

१८-होलिका व्या०

१९-प्राकृत श्रीपालचरित्र वृत्तिः

२०-समगादित्य चरित्र अपूर्ण

२१-प्रतिक्रमणहेतवः

२४-विचार शतक बीजक

२२-श्राद्धप्रायश्चित्तविधिः

२५-जयतिहुअण भाषा

२३-परसमय विचारमार संग्रह

२६-हितशिक्षाट्टात्रिंशिका

भुवनभानु केवली चरित्र आदि और भी आपके विरचित ग्रन्थ सुने जाते हैं। आपके भक्त हृदय से गंगाप्रवाह के जैसे पवित्र भावों से पूर्ण धारावाही प्रभु भक्ति के जो स्तवन प्रकाशित हुए हैं, उनमें भक्तात्माओंके आनन्द की मामग्री तो अस्वूट मिलती ही है, साथ ही उम जमाने की ऐतिहासिक मामग्री भी प्रचुर मात्रा में मिलती है। आपके ऐतिहासिक स्तवनों में संघवी राजाराम गिडिया और संघवी तिलोकचंद लुणिया के संघका विस्तृत वर्णन जानने को मिलता है। मुर्शिदाबाद की महाजन-

का वर्णन मिलता है, जोकि आज नाम शेष हो चुकी है ।
 मजनों से आपके विहार क्षेत्र की पर्यदा का पता भी
 है—बंगाल-बिहार-पू-पी-पंजाब गिन्ध-कच्छ-वाटियावाड-
 गाल-भाग्याद-राजपूताना आदि में आपने विहार करके जैन-
 का सुन्दर प्रचार किया था ।

॥ शिथिलाचार का प्रतिरोध ॥

हमारे चरितनायक ने अपने दादागुरु श्रीप्रीतिधर्मजी
 महागज और गुरुदेव श्रीप्रमृतधर्मजी महागज के साथ भीमिदा
 चरितार्थाधिगज पर वि० सं० १८६८ माघ शु० ५ को परि
 प्रवृत्ता सर्वथा न्याय करके यति सम्प्रदाय में बढने हुए शिथिला-
 चार का और प्रभु पूजाविरोधी दृष्टक मतके प्रचार का प्रतिरोध
 किया था । जैसे तपगच्छ में मन्यविजयजी पन्याम ने क्रियोद्वार
 किया था, वैसे ही रातगच्छ में आपने सुबिहित संयम मार्ग
 में प्रस्थान किया था । आप जैसे बहुधुत थे, वैसे ही परम
 संयमी भी ।

॥ प्रवचन प्रभावना ॥

हमारे चरित नायक के समय और योगफल में आका
 दृष्ट म्येधगी देवी मिद्र थी । महाप्रभावनाली कृपिमण्ड
 कल्पद् कल्पोऽयमकल्पतत्पर्या लांबरत कल्पितकाम ३
 नाम ॥ - ० ॥

शरीर की आत्मे शक्ति की थी । तब यह शरीरगत शक्ति
 का प्रत्याभिप्रायक रूप आकर प्रकट था । आकर प्रकट में प्रकट
 का प्रकाशना-धीमावृत्ती का भाव है प्रकटित विभिन्न मन्त्रों
 का प्रकटित शक्ति का ? । जो शरीर के प्रकाशना मानसिकी
 ने आकर गुणगौरव में आकर शक्ति प्रकाशना शक्ति
 का प्रकाशना में प्रकाशना २ । प्रकाशना मानसिकी ने प्रकटी
 का प्रकटी की शक्ति-आत्मे शक्ति का प्रकटी और यह प्रकटी का
 प्रकाशना शक्ति का प्रकटी की थी ३ । इस प्रकार प्रकटी का प्रकाशना
 प्रकटी, जो शरीर के प्रकाशना मानसिकी, शक्ति का प्रकाशना
 प्रकटी आदि आकर उच्छ्रित ज्ञान मंत्र और योगलक्षियों
 में जैन शासन के अनुगामी-वर्म भक्त हो गये थे ।

१-मो शास्त्रकारकर्मधीनिधेयमा इयाण कन्वाण विद्वाननुभवमो ।
 कर्तुं पुस्तकान् पठित परं पुत्रं देया विनिवेयमानि प्रवर्तते ॥ ५२

x x x

x x x

x x x

धर्मोत्तमं वाचं कार्थवर्षा महात्मना राजा तथैव प्रमदादनुष्ठितम् ।
 प्रादुर्दृश्यच्छश्वल तदर्थतत्, तन्मन्त्रान्मुनिमित्रजनानां शिष्यम् ॥ ५३
 २-धर्माय परं गुणं न्यमुत्तमं धर्मानभिष्टादिति शिष्याभ्यम् ।
 सामाहं मन्त्रमुत्तमा न्तिकाधय, म्य पण्डितं विनामिधं स्वम्
 जयन् ॥ ६० ॥

३-धर्मानां विद्वान् नृपतिमुत्तमं गंवा, समर्थयन्पुस्तकमकमुद्धरम् ।
 प्रादुर्दृश्यं च सूरिणामुत्तमा विद्वान् समाप्यान्नु वाप्युत्तु
 भवेत् ॥ ६१ ॥

(१७)

स्वर्गवास

हमारे चरित नायक को घृद्धावस्था के कारण शारीरिक अवस्था का अनुभव होने लगा था, तब आप बीकानेर पधार गये थे। पवासीर और घुटनों में यादी के दर्द आदि के रहने पर भी आप अपनी संयम क्रिया में तत्पर रहते हुए साहित्य सेवा करते रहते थे। ममराइयकहा की संस्कृत टीका आपने इसी अवस्था में प्रारम्भ की थी, किन्तु आयुष्य की निकटताके कारण से म्यशिक्षित पंडित प्रवर भीममतिवर्द्धन जी को इस टीका को पूर्ण करने की आज्ञा दी थी। शारीरिक अमाता के रहते हुए भी संयम की माता को वेदते हुए सं० १८७३ वौष क० १४ मंगलवार के दिन बीकानेरमें आपका आत्मम्यरूप में रमण करते हुए स्वर्गवास हुआ था।

ॐ शिष्य परम्परा ॐ

हमारे चरित नायक के कई विद्वान् शिष्य थे उनमें कल्याण विजयजी और विवेक विजय जी मुख्य थे परंतु दोनों अल्पकाल में स्वर्गसामी होगये थे उन दोनों के नाम से ज्ञानानन्दजी और गुणानन्दजी नाम के दो शिष्य थे। ज्ञानानन्दजी के मयाचन्दजी और गुणानन्दजी के मोतीचन्दजी ये शिष्य प्रशिष्य 'जति' अवस्था में ही रहे थे। इन के जति शिष्य 'वीरानंद' में अभी भी मौजूद हैं। परिग्रह का सर्वथा त्याग कर मंत्रंग पक्ष

साधुमार्ग स्वीकार करने पर आप के पट्ट शिष्य ७१ वें पट्टधर महात्मा श्रीधर्मानन्दजी महाराज थे, उनके पट्ट शिष्य ७२ वें पट्टधर संयमि श्रेष्ठ उ० श्रीराजसागरजी महाराज थे आपके श्रीमक्ति विनयजी और कविवर उ० श्रीसुमति मण्डनजी (श्रीसुगनजी) दो गुरुभाई थे । उ० श्रीराजसागर जी महाराज के पट्टशिष्य ७३ वें पट्टधर महाप्रभावक-आबूमहातीर्थ की रक्षा करने वाले महामहो० श्रीऋद्विसागरजी महाराज हुए । आपके पट्टशिष्य ७४ वें पट्टधर सुविहित शिरोमणि पूज्येश्वर गणाधीश्वर श्रीमान् सुखसागरजी महाराज साहब हुए । आपकी त्याग-तप-ज्ञान-संयममें विशिष्टता होने से आप ही के-नाम से खरतर गच्छ के करीब पाँचे दोसौ साधु-साध्वियों का समुदाय इस समय-राजपूताना-गुजरात-काठियावाड़-यू. पी. बंगाल-बिहार-मालवा-मेवाड़-मारवाड़ आदि प्रदेशों में प्रख्यात है । आपके पट्टशिष्य ७५ वें पट्टधर गणाधीश्वर श्रीमान् भगवान सागरजी महाराज साहब हुए आपके ७६ वें पट्टधर पूज्येश्वर गुरुदेव जैनाचार्य श्रीमजिन हरिसागरसूरीश्वरजी महाराज साहब अपने धर्मराज्य को चलाते हुए नयवन्ते वर्तमान हैं ।

उपसंहार

इस प्रकार प्रस्तुत चैत्यवन्दन चतुर्विंशति का केरचपिता हमारे चरित नायक पूज्येश्वर महामहोपाध्याय श्रीमन् क्षमा-

कल्याणजी महाराज की दिव्य और आदर्श संश्लिष्ट जीवनी यहाँ आलेखित की है। महापुरुषों के आदर्श जीवन की दिव्य ज्योतियाँ तिमिराच्छन्न हृदयवाले साधारण मनुष्यों को-आत्म्य मार्ग के पथिकों को मार्ग दर्शक होती हैं। मार्ग दर्शी मनुष्य परमात्मा को उसी तरह से प्राप्त कर लेता है जैसे सूर्य के प्रकाश में मनुष्य अपने सामने रानी हुई वस्तु को। हमारे चरितनायक की दिव्य ज्योति हमारे लिये हमेशा मार्ग प्रदर्शक बनी रहे यही एक प्रार्थना है। आपकी बनाई हुई दिव्य चैत्य-चन्दन वस्तुविशतिका का अनुवाद करते हुए आपके भावों में किर्मी प्रकार की क्षति पहुँची हो तो क्षमा प्रार्थना करती हूँ और याचना करती हूँ कि हे पूज्येश्वर ! आप अपने जैसी दिव्य शक्ति मुझे भी प्रदान करें। इति शं।

गुरुपठभूमी-

बुद्धिध्री



❀ जाहिर खबर ❀

श्री जैन संघ को विनती करने में आती है कि महोपाध्याय जी श्री मुमतिमागर जी महागज के मद्दुपदेश में कोट छवडा आदि के संघ की द्रव्य महायत्ना से हिन्दी भाषा में ज्ञान छपाने के लिये यहां "जैन प्रेम" खोला है। इस प्रेम में अच्छी, गुन्दर, मम्ती छपाई होती है और उसकी सचन ग्रन्थ प्रचार आदि शुभ कार्य में खर्च की जाती है अतः अपनी छपाई का कार्य इस प्रेम में अवश्य भेजें।

कल्पसूत्र बहिया कागज और बड़े अक्षर होने पर भी अल्प मूल्य २), दर्शवकालिक मूल भावार्थ सहित १), पर्वकथा संग्रह साधु-श्रावक आराधना सहित मरल संस्कृत १), विपाक सूत्र मूल, अर्थ, टीका, टिप्पणी और प्रामांगिक उपदेश सहित २), अंतगडदशा तथा अनुत्तरोचवाई ये दोनों सूत्र मूल अर्थ सहित साधु-साध्वी-ज्ञानभंडार-लायब्रेरी और श्री संघ को अमूल्य भेंट दिये जाते हैं। और उचवाई, उपासक दशा, उत्तराध्ययन, ज्ञाताजी आदि छपरहे हैं। रायप्रणेनीय, प्रश्नव्याकरण आदि छपने वाले हैं।

श्री हिन्दी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय,
जैन प्रेस कोटा.

ॐ नमः ॐ

श्रीमत्सुखसागर भगवद् हरिपूज्यसद्गुरुभ्यो नमो नमः



सुविहितशिरोमणि-प्रवचनप्रभाकर-सर्वतन्त्र स्वतन्त्र-अपूर्वग्रन्थरत्न-
रत्नाकर गुणगुरुगुरुश्रीमदमृतधर्मपट्टप्रभाकर-सुगृहीत-नामधेय
श्रीश्री १००८ श्रीमहामहोपाध्याय श्रीमत्क्षमाकल्याण-
पूज्यपादः प्रस्तुता 'श्रीलोकप्रकाशाख्या'-

श्रीजिनचेत्यवन्दन चतुर्विंशतिका ।



॥ अनुवादिका-कृत-मङ्गलादि ॥

(भद्रपुत्र वृत्तम्)

१

सद्विवेक-दया-शुद्धि-श्रीमूर्त्तात्मा मगस्वती ।
गुरु-तीर्थाधिनाथानां, मदा जीवात्सरम्भती ॥

२

श्रीश्रीलोकप्रकाशाख्या, नैक-शुभ-मनोहरा ।
चतुर्विंशतिका चेत्य-वन्दनानां लम्पदा ॥

३

निर्मिता पूज्यपूज्ययो, मया नानुवृत्तेऽपुना ।
गुरुणां ददया हिन्दी-भाषायां बांधगुट्टये ॥



॥ श्रीऋषभजिनचैत्यवन्दनम् ॥

* शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् *

सद्भक्त्या नत-मौलि-निर्जरवर-भ्राजिष्णु-मौलि प्रभा-
संमिश्रारुण-दीप्ति-शोभि-चरणाम्भोज-द्वयः सर्वदा ।
सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः सुचरितो धर्मार्थिनां प्राणिनां,
भूयाद् भूरि-विभूतये मुनिपतिः श्रीनाभिसूनुर्जिनः ॥१॥

अनुवाद—‘सद्भक्त्या’—मन्त्री भक्ति से ‘नतमौलिनिर्जरवरभ्राजिष्णुमौलिप्रभासंमिश्रारुणदीप्तिशोभिचरणाम्भोजद्वयः’—नतमस्तक इन्द्रों के देदीप्यमान मुकुटों की प्रभाके संमिश्रणवाली लालिमापूर्ण कान्तिसे सुशोभित चरण कमल युगल हैं जिनके ऐसे, ‘सर्वज्ञः’—लोक और अलोक में होनेवाले ममस्त भावों को केवल ज्ञान से सर्वतो भावेन यथार्थ रूपसे जाननेवाले, ‘पुरुषोत्तमः’—पुरुषोंमें प्रधान, ‘सुचरितः’—आदर्श और पवित्र जीवनवाले, ‘मुनिपतिः’—साधुओं के स्वामी, ‘श्रीनाभिसूनुः’—युगलियों के अधिपति श्रीनाभिकुलगर के पुत्र, ‘जिनः’ राग-द्वेष रूप अन्तरङ्ग दुश्मनों को जितनेवाले श्रीऋषभदेवस्वामी ‘धर्मार्थिनां’ धर्म के अर्थां मृगशु ‘प्राणिनां’ मव्यात्माओं को ‘भूरिविभूतये’—ज्ञान दर्शन चाग्नि और धीर्य के अनन्त ऐश्वर्य के लिये ‘भूयाद्’—हैं ।

सद्बोधोपचिताः सदैव दधता प्रौढप्रतापश्रियो,

+

+

व्यञ्जित की है । क्योंकि सूर्य दिन में ही तथोक्त गुणों को धारण करता है, और रात्री में अस्त हो जाता है । परंतु भगवान् तथोक्त गुणों को सदैव निरंतर धारण करते हैं । इससे उपमा के साथ व्यतिरेकालंकार भी भासित होता है ।

यो विज्ञानमयो जगत्त्रयगुरुर्यं सर्वलोकाः श्रिताः,
सिद्धिर्येन वृता समस्तजनता यस्मै नतिं तन्वते ।
यस्मान्मोहमातिर्गता मतिभृतां यस्यैव सेव्यं वचो,
यस्मिन्निश्चयगुणास्तमेव सुतरां वन्दे युगादीश्वरम् ॥३॥

अनुवाद—‘यो विज्ञानमयो जगत्त्रयगुरुः’—जो विधि-
द्विज्ञान में पूर्ण थे, जन्म में ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अविज्ञान को
धारण करने वाले थे । जो ज्ञान के द्वारा ही तत्कालीन यौगलिक
मात्रोंको मिटाकर अग्नि, मग्नि और कृपि कर्म के व्यवहार को बताने
वाले हुए थे । इमीलिये जो स्वर्ग मर्त्य और पाताल रूप तीनों
जगत् के गुरु थे । ‘यं सर्वे लोकाः श्रिताः’—अपने अज्ञान जनित
दुःखों को मिटाने के लिये लोकों ने ‘विनये’ अपना आश्रय बनाया
था । ‘सिद्धिर्येन वृता’—दीक्षा लेकर ‘विनये’ शत्रुर्ष मनःपर्य
ज्ञानरूप सिद्धि का प्राप्त की थी । ‘समस्तजनता यस्मै नतिं
तन्वते’—समस्त जनमृशयने ‘विनये लिये’ प्रगति वेदना की थी ।
‘यस्मान्मोहमातिर्गता’ गुणस्थानक गते हुए श्रीगमोह नामक
गुणस्थानक में विनये मोहपृष्टि गंधया नष्ट हो गई थी । ‘मतिभृतां

यस्यैष सेव्यं वचः'—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और
 अन्तरायकर्म रूप घाती कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने पर, तेरहवें
 योगिकेवली नामक गुणस्थानक में केवलज्ञान और केवलदर्शन
 के जरिये, तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से समवसरण में होता हुआ
 जैनका पैंतीस गुणों से युक्त उपदेश वचन ही बुद्धिमानों को सुनने
 और मेवन करने योग्य था, और है भी। 'यस्मिन्विश्वगुणाः' चौदहवें
 योगिकेवली नामक गुणस्थानक में शैलेशी करण से योगानिरोध
 करके पूर्यके चार घातीकर्म और बाकी के वेदनीय-आयु-नाम और
 गोत्रकर्म रूप चार अधानी—ऐसे संसार के कारण भूत आठ कर्मों
 को सर्वथा क्षय करके सिद्धशिला पे जाकर सिद्ध होने पर 'जिनमें'
 आत्माके ममस्त गुण प्रकटे 'तमेव युगादीश्वरं'—उन युगकी
 प्रादि में होनेवाले पहले तीर्थंकर श्रीऋषभदेव भगवान् को 'सुतरां
 वन्दे'—में विधि पूर्वक वन्दन करता हूँ ।

इम काव्य में पूज्य स्तुति कर्ता महोदयने व्याकरण प्रसिद्ध
 'यत्' शब्द की मात्रों विभक्तियों ['यः-यं-येन-यस्मै-यस्मात्-यस्य-
 यस्मिन्']—का प्रयोग बड़े अच्छे ढंग से किया है ।

भावार्थ.—सर्वज्ञ, पुरुषोत्तम, अच्छे चरित्रवाले, और
 सद्भक्ति से नमस्कार करते हुए देवन्द्रों के देदीप्यमान मुकुटों की
 प्रभा से मुग्धोभित चरण कमल को धारण करनेवाले श्रीनाभिराजा
 के पुत्र मुनिपति श्रीऋषभदेवस्वामी धर्माधि प्राणियों का बड़े भारी
 आश्रय के लिये हों ॥ १ ॥

जिनने सद्बोध से पुष्ट ऐसी प्रताप लक्ष्मी को धारण करते हुए, एक क्षणमात्र में अज्ञानरूप अन्धकार के विस्तार को विशेष करके नष्ट कर दिया है, और जिनने श्रीशत्रुञ्जयतीर्थाधिराज के पड़ेले शिखरको सूर्य के जैसे उद्भासित करते हुए भव्यजीवों का हित किया है, वे श्रीमरुदेवी माता के पुत्र श्रीऋषभदेवस्वामी हमेशा जयवन्तें बचें ॥ २ ॥

जो विज्ञानमय, और तीनलोक के गुरु हैं। जिनको सब लोगोंने अपना आश्रय बनाया है। जिनने सिद्धि का प्राप्त की है। जिनके लिये जनता वन्दन करती है। जिन में मोहपुद्धि गर्वधा बली गई है। जिनका वचन ही बुद्धिमानों के मेष्य है। जिनमें समस्त गुण रहे हुए हैं। उन श्रीषुगादीश्वर-श्रीऋषभदेवस्वामी को मैं बारंबार वन्दन करता हूँ ॥ ३ ॥

श्री अजितनाथ जिन चैत्यवन्दनम्

(मालिनी-छन्दः)

सकल-मुख-समृद्धिर्यस्य पादारविन्दे,

विलसति गुणरक्ता भक्तराजीवनिरयम् ।

त्रिभुवन-जन-मान्यः शान्तमुद्राभिरामः

सजयतु जिनराजस्तुष्टुग-तारङ्गसुधीं ॥ १ ॥

अनुवादः— 'सकल'—जिनके 'पादारविन्दे'—पाद

'विलसति'—गुणरक्ता 'भक्तराजीव'—भक्तों की



निजबल-जितराग—द्वेष—विद्वेषिवर्ग,
तमजितवरगोत्रं तीर्थनाथं नमामि ॥ २ ॥

अनुवादः—‘ यस्य ’-जिनके ‘ निर्वर्णनेन ’-स्तुति आ
के द्वारा गुणोत्कीर्तन करने में ‘ किल ’-निश्चय करके ‘ भव्यः ’
मोक्षाभिलाषी-भव्य जीव ‘ व्यपगत दुरितौघः ’-नष्ट होगा
है पापों का समूह जिसके ऐसा-निष्पाप और ‘ प्राप्त मोक्ष प्रपंचः ’
प्राप्त किया है परमानन्द का विस्तार जिसने ऐसा-परमसुखी-होता हुआ
‘ प्रभवति ’-परमात्मदशा की प्राप्तिरूप प्रभुत्व को पाता है
‘ निजबलजितराग-द्वेष-विद्वेषिवर्ग ’-जितने अपने ही परा
क्रमसे-उग्रतपोबल से राग और द्वेषरूप अन्तरंग दुश्मनों के समू
को जीत लिया है । ‘ अजित-वरगोत्रं ’-जो किसीसे भी ना
हारनेवाले अजित और श्रेष्ठ वंश को धारण करने वाले हैं । ‘ तीर्थ
नाथं ’-जो प्रवचनरूप-प्रथम गणधरकी स्थापना रूप अथवा सा
माप्ती-भावक और श्राविका एमे चतुर्विधसंघकी-स्थापना रूप तीर्थ
के स्वामी हैं । ‘ तं ’-उन श्रीअजितनाथ स्वामी को ‘ नमामि ’-
में वन्दना करता हूँ ।

नरपति—जितशत्रो वंश—रत्नाकरेन्दुः

सुरपति—यतिमुख्येर्भक्तिदक्षैः समर्च्यः ।

दिनपतिरिव लोकेऽपास्तमोहान्धकारो

जिनपतिरजितेशः पातु मां पुण्यमूर्तिः ॥ ३ ॥

अनुवादः— 'नरपतिजिनशत्रोर्धंशरक्षाकोन्दुः'—

अयोध्या के अधिपति धीजितशत्रु महाराजा के वंशरूप समुद्र की समृद्धि को बढ़ाने में चन्द्रमा के समान, [जैसे २ चन्द्र की कलाएँ बढ़ती हैं, वैसे २ समुद्र का जल भी बढ़ता है । यह बात लोकप्रसिद्ध ही है] 'भक्तिद्रक्षैः'—भक्ति करने में चतुर ऐसे 'सुरपति-यतिमु-
 र्गयैः'—देवैन्द्रों में और महर्षि-योगियों में 'समर्च्यैः'—भली प्रकार पूजनीय-वन्दनीय और स्मरणीय, 'लोके'—लोकमें 'जिनपतिः
 इव'—सूर्यके जैसे 'अपास्त-मोहान्धकारः'—दूर कर दिया है अज्ञानरूप अन्धकार को जिनने ऐसे, 'पुण्यमूर्तिः'—काम क्रोध आदि से रहित परमशान्त ऐसी पवित्र मूर्ति को धारण करने वाले, 'जिनपतिः'—तीर्थंकर नाम कर्म के कारण आठमहाप्रतिदाय्य आदि अनिष्टय विशेषों को धारण करने वाले होने में सामान्य केशवियों के स्वामी 'अजिनेशः'—'श्रीअजिननाथ' इन पथार्थ नाम को धारण करने वाले दूसरे भगवान्, 'मां पानु'—मेरी रक्षा करो ॥ ३ ॥

भावार्थः— गुणानुगमी भक्तों की धेष्णिके समान अनन्त अन्धकार मुक्तों की समृद्धि जिनके चरण कमलों में हमेशा क्रीड़ा करता है । जो तीन लोक के माननीय है । जो शान्त मुद्रा में विराजित है, और जो सामान्य केशवियों के स्वामी है । ये श्री नारदा तीर्थ के नाथक श्री अजिननाथस्वामी महा जगन्नेश्वर—अज्ञानस्वामी मोहजिनन गुलामी का मिटानेवाले हैं ॥ ३ ॥

जिनके गुणों का स्तवन करने में मोक्षानिर्वाण अन्धकार

रागममूर्धे मुक्त हो कर, और परमानन्द को पाकर, निषण्ण कांडे परमानन्दगा रूप प्रभुत्वको प्राप्त करते हैं । जिनने अपने ही पापकर्म में राग और द्वेषरूप आत्मा के दुश्मनममुदाय को जीत लिया है । दुश्मनों को अजेय ऐसे इथाह्वंश में जन्म लेने वाले, उन तांगी-तीर्थों के अधिपति श्रीप्रजितनाथस्वामी को मैं वंदन करता हूँ ॥ २ ॥

नरपति श्रीजितगजु महाराजा के वंशरूप गमूद्र की मूर्ति को वशने में चन्द्रमा के समान, मक्ति में चतुर जेबे दोनों के बीच योगिन्द्रों के पूजनीय-वंदनीय और समरणीय, एवं केन्द्रों में मोक्षरूप अन्धकार को दूर करनेवाले, परित्र-निरोध मूर्ति पापग करनेवाले, विजिताश्री के स्वामी जेमे श्री प्रजितनाथ को मैं वंदना करता हूँ । ॥ ३ ॥

श्री सम्भवनाथ जिन चैत्यवन्दनम्

(भाष्य सहितः)

एतद्दश्यात्मकानिना प्रचुरता-भव भ्रान्तिमुक्ता मनुष्य
 एषु तः एतन्नुभावाद्वास्तानानजगुणान्येषिणः मया
 एतन्नुभावाद्वास्तानानजगुणान्येषिणः मया
 एतन्नुभावाद्वास्तानानजगुणान्येषिणः मया

एतद्दश्यात्मकानिना प्रचुरता-भव भ्रान्तिमुक्ता मनुष्य

एतद्दश्यात्मकानिना प्रचुरता-भव भ्रान्तिमुक्ता मनुष्य

म्बुद्ध होकर 'उज्वलं'-मन्त्रा निदोष, 'शिव-पद्-निगमं'-
 मोदि स्थान में पहुँचानेवाले मार्गभूत 'घृत्तं'-संयम को स्वीकार
 करके 'नीरन्ध्रं'-अत्यन्त निविड 'कर्मपङ्कमपञ्चं'-आठकां
 रूप कीचढ़ के विस्तार को 'शुक्लध्यानोदकेन'-शुक्लध्यानरू
 पानी से 'दूरयित्वा'-दूर करके-उदय-उदीगणा और सत्तामें
 मात्पान्तिरु भावमें हटा करके, 'प्रकृतिं'-आत्मा की स्वामासि
 पररूपी अवस्था को 'उपगतः'-प्राप्त करनेवाले, 'निर्विकल्प
 चरूपः'-योग चपलता से रहित-निर्विकल्प-महज्जमभाषि स्वरूप
 वाले हुए हैं वे, 'असौ'-ये 'जिनपतिः'-जिननाम कर्म
 रूप अद्वितीय पुण्यप्रकृति में चतुर्विध मंषकी स्थापना करनेवाले
 जिनेश्वर, 'वीतरागः'-रागद्वेष में रहित परमात्म दशा में लीन होनेवा
 लें वीतराग, 'ताश्च-रष्यजः'-घोड़ेके चिह्नको धारण करनेवाले भगवान्
 श्रीमंभरनाथ स्वामी 'एव'-ही 'जगति'-जगत में 'मदा'-
 देमदा 'सेव्यः'-वन्दन-कीर्तन-पूजन आदि में मेरा करने
 योग्य हैं ॥ २ ॥

यार्थो विद्योतिरक्षप्रकर इव परिभ्राजते सर्वकाले,
 यस्मिन्निःशेषदोषव्यगमविशदे श्रीजितारोमनृजे ।
 दृष्ट्वाप्यो दृष्ट्वास्त्यैः स्फुटगुणनिकरः शुद्धबुद्धिक्षमादिः,
 कन्यागर्भानिवाग. न भवति यद्गताभ्यर्चनीयो न केवाम ।

अनुवाद—'साधो'—'गमूढमे' 'विद्योनिगमयकराद्य'—
 देदीप्यमान-मंजरी स्वगमूढ के जंगे 'निःशेष-शेष-व्यपगम
 विज्ञाने'—'गमन टोपों के गर्दपा नष्ट होजाने में निर्मल स्वभाव
 वाले 'साधिन'—'जिन 'धीजिगारेः मन्त्रे'—'धीजितारि नामक
 महाराजा के पुत्रमन् धीरमदनराय स्वामिने 'दुष्टमर्षैः'—'दुर्भन्वो
 यो-सिध्याधी प्राणियो 'दुष्प्रापः' अत्यन्त दुःखमें प्राप्त करने-
 योग्य-दुर्लभ 'शुद्धयुक्तिक्षमादिः'—'यद्य जीव बरुं शान्त रगी,
 यो पवित्र भावना-शुद्धि, मामर्षे के होने पर भी अपराधियों
 पर क्षमा करना आदि 'शुद्धगुणानिहारः'—'जेंमें प्रकाशमान्
 प्रसिद्ध गुणों का गमूढ 'मर्षेकाले' निरन्तर 'परिभाजते'—
 समबला है । 'यः बन्धाणधीनियामः'—'वे बन्धाणलक्ष्मी-
 के निषाम भूत भगवान् 'पदल'—'पदो 'केपां' किन द्वितैपिषोंको
 'न अभ्यर्चनीयः' पूजने योग्य नहीं है ? अर्थात् अवश्य ही
 पूजनीय है इस श्लोक में तीसरे व चौथे चरण में 'क्षमा' और
 'बन्धाण' पदका प्रयोग करके कर्णने अपना नाम भी सूचित
 किया है ॥ ३ ॥

भाषार्थ—जिनकी भक्ति में लीन चित्तवाले भव्यजन जल्दी में
 अनन्त संसार के परिभ्रमण में मुक्त हो कर पवित्र भावों में विकसित
 अनन्तज्ञान दर्शन और नाश्रि रूप आत्म गुणों में रमण करनेवाले
 होजाते हैं, अर्थात् निष्ठ होजाते हैं । जो परम शान्त रम में व्याप्त
 हैं । जो गारे संसार के उपराग हैं । जो पौष्टलिक विकारों से हीन

सम्बुद्ध होकर 'उज्वलं'-सर्वथा निर्दोष, 'शिव-पद-निगमं'-
 सिद्धि स्थान में पहुँचानेवाले मार्गभूत 'वृत्तं'-संयम को स्वीकार
 करके 'नीरन्ध्रं'-अत्यन्त निविड 'कर्मपङ्कप्रपञ्चं'-आठकर्म
 रूप कीचड़ के विस्तार को 'शुक्लध्यानोदकेन'-शुक्लध्यानरूप
 पानी से 'दूरयित्वा'-दूर करके-उदय-उदीरणा और सत्तामें
 आत्यन्तिक भावमें हटा करके, 'प्रकृतिं'-आत्मा की स्वाभाविक
 अरूपी अवस्था को 'उपगतः'-प्राप्त करनेवाले, 'निर्विकल्प-
 स्वरूपः'-योग चपलता से रहित-निर्विकल्प-सहजसमाधि स्वरूप-
 वाले हुए हैं वे, 'असौ'-ये 'जिनपतिः'-जिननाम कर्म
 रूप अद्वितीय पुण्यप्रकृति से चतुर्विध संघकी स्थापना करनेवाले
 जिनेश्वर, 'वीतरागः'-रागद्वेष में रहित परमात्म दशा में लीन होनेवा-
 ले वीतराग, 'तादर्थ्यध्वजः'-घोड़ेके चिह्नको धारण करनेवाले भगवान्
 श्रीगंभवनाथ स्वामी 'एव'-ही 'जगति'-जगत में 'सदा'-
 हमेशा 'मेव्यः'-वन्दन-कीर्तन-पूजन आदि से सेवा करने
 योग्य हैं ॥ २ ॥

वार्धो विद्योतिरत्नप्रकर इव परिभ्राजते सर्वकाले,
 यस्मिन्निःशेषदोषव्यगमविशदे श्रीजित्तारेस्तनूजे ।
 दुष्प्रापो दुष्टमत्त्वैः स्फुटगुणानिकरः शुद्धबुद्धिक्षमादिः,
 कल्याणश्रीनिवागः स भवति वदन्ताभ्यर्चनीयो न केपाम् ।

अनुवाद—‘घाघौ’—समुद्रमें ‘विद्योतिरत्नप्रकरह
 देदीप्यमान-तेजस्वी रत्नसमूह के जैसे ‘निःशेष-दोष-व्यप
 विशद्रे’—ममस्त दोषों के सर्वथा नष्ट होजाने से निर्मल स्व
 वाले ‘पाश्मिन्’—जिन ‘श्रीजिनारेः तनूजे’—श्रीजितारि न
 महाराजा के पुत्ररत्न श्रीसम्भवनाथ स्वामिमें ‘दुष्टसत्त्वैः’—दुर्म
 को-मिथ्यात्वों प्राणियों ‘दुष्यापः’ अत्यन्त दुःखसे प्राप्त क
 योग्य-दुर्लभ ‘शुद्धबुद्धिक्षमादिः’—सब जीव करुं शान्त र
 की पवित्र भावना-बुद्धि, सामर्थ्य के होने पर भी अपरा
 पर धमा करना आदि ‘स्फुटगुणानिकरः’—ऐसे प्रकाश
 प्रसिद्ध गुणों का समूह ‘सर्वकाले’ निरन्तर ‘परिभ्राजते
 चमकता है। ‘मः कल्याणध्यानिवासः’—ये कल्याणल
 के निवास भूत भगवान् ‘वदन्त’—कहो ‘केषां’ किन् हितैषियं
 ‘न अभ्यर्चनीयः’ पूजने योग्य नहीं हैं? अर्थात् अवश्य
 पूजनीय हैं हम श्लोक में तीनों व चौथे चरण में ‘क्षमा’
 ‘कल्याण’ पदका प्रयोग करके कहाने अपना नाम भी छ
 किया है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिनकी भक्ति में लीन चित्तवाले भक्तजन अन्त
 अनन्त संसार के परिभ्रमण में मुक्त हो कर पवित्र भावों में विश्र
 अनन्तज्ञान-दर्शन और चाग्रि रूप आत्म गुणों में रमण करनेव
 होजाने हैं, अर्थात् सिद्ध होजाने हैं। जो परम ज्ञान रस में व्य
 हैं। जो सारे संसार के उपकारी हैं। जो पौष्टिक विकारों से हैं

दिव्य ज्योति स्वरूप हैं। उन अद्वितीय आत्म लक्ष्मीको धारण करने-
वाले श्रीसम्भवनाथ स्वामी की हे मोक्षामिलापियों ! मोक्षपदकी
प्राप्ति के लिये सेवा करो ॥ १ ॥

मन-वचन और काया के अत्यन्त स्वच्छ परिणामों से अङ्कित
जीवन को धारणकरनेवाले, स्वयं संबुद्ध होकर सर्वथा निर्दोष, सिद्धि
स्थानमें पहुँचानेवाले मार्गभूत-संयम को स्वीकार करके, अत्यन्त
निचिड़ आठ कर्मरूप कीचड़ के विस्तार को शुक्लध्यान रूप पानीमें
दूर करके-उदय उदीरणा और सत्तामें आत्यन्तिक भावसे हटाकरके,
आत्मा की स्वामाविक अरूपी अवस्थाका प्राप्त करनेवाले, योगचपलता
से रहित निर्विकल्प सहज समाधि स्वरूपवाले वे, ये जिननाम
कर्मरूप अद्वितीय पुण्य प्रकृति से चतुर्विध संघकी स्थापना करनेवाले
जिनेधर, वीतराग देव घोड़े के लाञ्छन को धारण करनेवाले
भगवान् श्री सम्भवनाथ स्वामी ही जगत् में हमेशा वन्दन पूजन
शादि में सेवा करने योग्य हैं ॥ २ ॥

समृद्ध में देदीप्यमान तेजस्वी स्व समृद्ध के जन्मे, समस्त
दोषों के सर्वथा नष्ट हो जानेमें, निर्मल स्वभाववाले, जिन श्रीजिनारि
महागजा के पुत्र स्व श्री सम्भरनाथ स्वामि में दुर्भय मिथ्यान्वियों
को अन्यन्त दुःख में प्राप्त करने योग्य दुर्लभ, 'सर्व तीर हरे
प्राप्तन र्मी' की परिश्रम भावना रूप-शुद्ध बुद्धि, मामात्र के होने
पर भी अत्रयाधियों को मार्गी देने रूप-श्रमा आदि प्रसिद्ध गुणों
का समृद्ध निरन्तर धमकना है। वे कल्याण लक्ष्मी के निवास भू

भगवान् कदा दिन दिनैपिषो को पूजने योग्य नहीं हैं । अर्थात्
अवश्य पूजनीय हैं ॥ १ ॥

श्रीअभिनन्दन-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(इन्द्रविजयवन्दन-छन्दः)

विशद-शारद-सोम-समाननः

कमल-कामल-घारु-विलोचनः ।

शुचिगुणः सुतरामभिनन्दन !

जय मुनिर्मलनाम्नित-भूषणः ॥ १ ॥

अनुवाद—' विशदशारदसोमसमाननः '—शारद आदि
आवर्णों का सर्वथा प्रभाव होने में अन्यन्त निर्मल ऐसी शारद
शुद्धी पूर्णता में उदित होनेवाले चन्द्रमा के जैसे मनोहर और
निर्विकारी सुखदाते, ' कमलकामलघारुविलोचनः '—दृक्कृत
कमल के समान कामल, और सुन्दर लोचनोंवाले, ' शुचिगुण, '—
निर्दोष-पवित्र और अनन्त गुणों को धारण करनेवाले, ' मुनिर्म-
लनाम्नित भूषणः '—प्रशुभ रूपवान्, गणगणित, सब प्रकार के सुल-
क्षणों में पूर्ण और विशद अतिशयो में शिवाजित दर्शयवाले,
' अभिनन्दन ' ! इस अवसरविर्णोकालकी धार्मिकता में होनेवाले
धर्म भगवान् हे धर्म अभिनन्दन शर्मा ! ' सुतरा जय '—आप
अनन्त कालतक उपरते वना ॥ १ ॥

नेत्र ! :-अन्तरंगदृग्मनो को जीतने वाले-मामान्य केवलियों के स्वामी तीर्थंकर नाम कर्म की पुष्प-प्रकृतिक अद्भुत और अलौकिक ऐश्वर्य को धारण करनेवाले, हे अभिनन्दन देव ! ' ते पदं '-तुम्हारे धारण कमल, अथवा अरिहंत अवस्था और सिद्ध अवस्था रूप तुम्हारा पद ' सचिरभक्ति-सुयुक्तिभूतः मम '-निर्दोष और सुन्दर भक्ति की विशिष्ट युक्तियों को धारण करनेवाले मेरे लिये ' निरंतरं '-हमेशा भवोभव में ' धारणं अस्तु '- धारणभूत हो ॥ ३ ॥

मायार्थ—बादल आदि आवरणों के गर्वधा अभाव होने-में अत्यन्त निर्मल ऐसी शरद् प्रभु की पूर्णिमा में उदित होनेवाले चन्द्रमा के जैमे मनोहर और निर्विकारी मुखवाले, प्रफुल्लित कमल के समान कोमल कमनीय लोचनोंवाले, निराश्रुत-पवित्र और अनन्त ज्ञानादि गुणों को धारण करनेवाले, विशिष्ट रूपवान्, रोग-रहित, सब प्रकारके प्रधान लक्षणों में पूर्ण और विशद अनिदियों में विराजित शरीरवाले, इस अवगर्षिणी कालकी चौथीमी में होनेवाले चौथे भगवान् हे श्रीअभिनन्दन स्वामी ! आप अनन्त काल तक जगज्जिने वषों ॥ १ ॥

हे मनोहर चन्द्र के लालन में लालित चरणकमलवाले ! हे दया के भारी भण्डार ! मैं इस लोक में मेरे इच्छित कार्यों की सिद्धि करनेवाले आपका लाल कर अन्य किसी को भी नहीं मानता हूँ ॥ २ ॥

हे उच्छिष्ट मंग को धारण करनेवाले, - हे जगत् प्रसाद

ने रोकनेवाली प्रधान शक्ति से सम्पन्न ! हे श्रीमान् संवर नामक
 राजाधिराज के पुत्र रत्न ! अव्याप्ति- अतिव्याप्ति और असंभव का
 तोपत्रयी से मुक्त अविसेवादी नयमार्गके प्रवर्तन में ग्राह्य पाण्डित्य
 को धारण करनेवाले हे मार्गदर्शक ! अन्तरंग दुःखमनों को जीतनेवाले
 सामान्य केवलियों के स्वामी- श्रीतीर्थकर नामकर्म की पुण्यप्रकृति
 के अद्भुत और अलौकिक ऐश्वर्यको धारण करनेवाले हे अभिनन्दन
 देव ! तुम्हारे चरण कमल या अरिहंत और सिद्धावस्था रूप तुम्हारे
 चरण निदोष और सुन्दर भक्तिकी विशिष्ट युक्तियों को धारण करने
 वाले मेरोलिये हमेशा- भवोभवमें शरण भूत हो ॥ ३ ॥

श्री सुमतिनाथ-जिन-चैत्यवन्दनम्

(उपेन्द्र वज्रा वृत्तम्)

सुवर्णत्रणों हरिणा सवर्णों,

मनो वनं मे सुमतिर्वलीयान् ।

गतस्ततो दुष्टकुट्टिराग-

द्विपेन्द्र ! नैव स्थितिरत्रकार्या ॥ १ ॥

अनुवादः— ' दुष्ट-कुट्टिराग-द्विपेन्द्र ! '— एकान्त-

वादान्मक- अथार्थसिद्धान्तका प्रतिपादन करनेवाले सांख्य-सौगता
 आदि मिथ्यादर्शनों के अभिनिवेश लक्षण वाले- कुट्टिरागरूप

समं दुरात्मीय-परिच्छेदन !

सुबुद्धि-भर्ता सुमतिर्जिनेशो,

मनोरमः स्वान्तःमितो मदीयम् ॥ ३ ॥

अनुवादः—‘दुष्ट-बुद्धे !’ प्रतिक्षण में नाश होनेवाले, आत्मा
 भिन्न, ऐसे पुद्गलादि द्रव्यों में ममत्व बढ़ानेवाली अशुद्ध चेतना
 पैदा होनेवाली हे दुष्ट कुमति देवी ! ‘दुरात्मीयपरिच्छेदन’-
 दुर्गति को देनेवाले कर्मबन्धन में कारण भूत मिथ्यात्व, अविरोध-
 ल्पण्य और योगरूप अपने कुत्सित परिवार के ‘समं’-साथ व
 इतः’- यहां से-मेरे पास से ‘सुदूरं’- बहुतदूर ‘व्रज’-
 वाली जा, क्यों कि ‘सुबुद्धि-भर्ता’- अनन्तज्ञान दर्शनादि गुणों
 रमणकरने वाली शुद्धचेतना रूप सुमति के स्वामी ‘मनोरमः’-
 ध्यात्मा-योगियों के मन को प्रमत्त करनेवाले ‘जिनेशः’-
 सुमतिः’-तीर्थ को प्रकट करनेवाले देवाधिदेव श्री सुमतिनाथ
 गवान ‘मदीयं’- मेरे ‘स्वान्तं’- चित्तमें ‘इतः’- पहुँच
 । हे दुष्टबुद्धे ! अब यहां तेरा निभाव नहीं होगा ॥ ३ ॥

भावार्थः—एकान्तवादान्तक अयथार्थ भिद्धान्त का प्रतिपादन
 करने वाले मांस्वयं बांध आदि मिथ्यादर्शनों में अभिनिवेश लक्ष्य
 अक्षित कुदृष्टिगम रूप हे दुष्ट गजगज ! मेरे मन रूप धन में कमनीय
 चेतना की कानि की धारण करने वाले अप्रतिहत बलशाली मिहके जैने
 स्वामी पधार है । इसलिये अपनी जान बचाने के
 भये तुझे यहां [मेरे मन रूप धन में] नहीं टहरना चाहिये ।

नहीं तो डर के पड़े तबें धर्मस्थान को खींचालेगे ॥ १ ॥

अरे प्राप्य मान लक्षणबाले द्वेषरूप मयहूर दुःखजन-आदिदेव ।
दीपरागी महात्माओं के स्वामी, मार्गकनामा धीमेपनोन्ट के पुत्रग्न
धीगुमानिनाथ स्वामी धरे मन में व्येधरूप से मज्जल मेघ के जैसे
गर्जते हैं । ये भगवान् तुझ को क्षणमात्र में छान्त कर देंगे । यदि तू
अपना दिगु खारता है तो—मेरे मनमें दूर हो जा । नहीं तो तेरा अन्त
होनेवाला है ॥ २ ॥

प्रतिक्षण नाशहोने वाले आत्म्यागे भिन्न ऐसे वृद्धनादि
पदार्थों में सम्यक् बहानेशाली अशुद्ध भेदना से पैदा होनेवाली
दुष्ट बुद्धि होती । दुर्गतिहोने देनेवाले धर्मबन्धनमें कारणभूत
विध्वंसक, अविभक्ति, कषाय और योगरूप अपने बुद्धिगत परिहार के साथ
तू यहाँ में [में पावने] बहुत दूर चली जा । क्योंकि अनन्त
मान दर्शनार्थि गुणों में सम्यक् करने वाली शुद्धभेदनारूप गुमति के
स्वामी भक्त्यात्म-योगियों के मनका प्रसन्न करने वाले तीर्थंकर धीगुमति-
नाथ भगवान् मरे चित्तमें आपहृष्ये हैं । हे दुर्मने ! अब यहाँ तेरा
निमाय नहीं होगा ।

श्रीपद्मप्रभजिन-चैत्यवन्दनम् ।

(भुजङ्ग प्रवाल वृत्तम्)

उदाहरण—प्रभामण्डलेर्भासमानः ।

कृतात्यन्त-दुर्दान्त-दोषापमानः ।

सुसीमाङ्गज ! श्रीपतिदेवदेवः ,

सदा मे मुदाभ्यर्चनायस्त्वमेव ॥ १ ॥

अनुवादः— 'उदार-प्रभामण्डलेः'-अनन्त पुण्यसागरों में पैदा होने वाले उदार-देदीप्यमान प्रभामण्डलों से-स्वभाविक योग-जनित तेजः पृष्ठों में 'भाममानः'-पूर्णतया प्रकाशित होने हुए-ज्योतिर्मय, 'कृतात्यन्त-दुर्दान्त-दोषापमानः'-दुःख में दमन करने योग्य दोषोंको आत्यन्तिक भाव में-मर्यादा अपमान करनेवाले-मंगल के कारण भूत दोषों को साथै मिटा देनेवाले 'श्रीपतिः'-अचल अक्षय और अनन्त आत्मलक्ष्मी के स्वामी 'देवदेवः'-इन्द्रादि के भी पूज्य ऐसे देवधिदेव 'सुसीमाङ्गज !'-श्रीमान 'धर' नामक महागजाकी पट्टरानी श्रीपति सुसीमादेवी के तनय-देवप्रथमेशमित्र ! 'गङ्गा'-हमेला 'मे'-मैरुदिय 'स्व' ग्य'-श्रावरी 'मृदा'-निःकारट चित्त की प्रमत्त से 'अभ्यर्चनाय'-सिंहारक रूप और भाव में पूजा का योग्य है ॥ १ ॥

यदीय मनः पङ्कज निगमंय,

स्वयात्कृत्स्नं व्ययस्वपण देव !,

प्रशान्तस्वपं समेशानिपणं

जगन्नाथ ! जानामि लोके, सुधन्यम् ॥ २ ॥

अनुवादः— 'देव !'-दिव्यरूप को धारण करनेवाले देव ! 'सर्दीये'—द्विव मध्यमाका के 'मनः पङ्कजं'—हृदय कम-को 'स्वया ध्येयस्वरूपेण'—स्वयं रूप आपने 'नित्यं एव'—सदैव अनन्तकाल 'गुणोमित किया है । 'सं एव'—उगो महात्मा को जगन्नाथ'—हे जगदीश्वर 'लोके'—तीनों लोक में 'प्राधनस्य-स्य'—लोकेश्वर स्वरूपवाला 'अतिगुण्यं'—अत्यन्त पवित्र और सुधन्यं'—धन्यवादास्पद 'जानामि'—मैं जानता हूँ ॥ २ ॥

अतोऽर्धाश ! पद्मप्रभाऽऽनन्दधाम,

स्मरामि प्रसामं तवैवाङ्ग नाम ।

मनोवाञ्छितार्थप्रदं योगिगम्यं,

यथा चक्रवाको रवेर्धामगम्यस ॥ ३ ॥

अनुवाद — 'अतः'—इसलिये 'यथा'—जैसे 'गम्यं'—[न्दर गम्यं 'रवेर्धाम'—सूर्यक प्रकाश को 'चक्रवाकः'—चक्रवा-मय पक्षी चाहता है, वैसा ही 'अङ्ग-पद्मप्रभा-अर्धाश !'—र्धाशप्रभ स्वामिन् 'आनन्दधाम'—पद्म आनन्दका मन्दिर मनावाञ्छितार्थप्रद - इच्छितार्थ का देनेवाला 'योगिगम्यं'—ब्रह्मान्त मन्त्र योगियों को जानने योग्य 'तव नाम-गम्यं'—आपके नाम का ही मैं प्रसाम अत्यन्त 'स्मरामि'—स्मरता हूँ ॥ ३ ॥

मावार्थः—अनन्त पुण्य राशियों में पैदा होनेवाले
 देदीप्यमान प्रमामण्डलों में—नेत्रःपुत्रों में पूर्णतया प्रकाशित
 हुए, ज्योतिर्मय, दुःगमे दमन करने योग्य [१-दानान्तराय
 लामान्तराय २-वीर्यान्तराय ४-भोगान्तराय ५-...
 ६-हास्य ७-रति ८-अरति ९-मय १०-गुणा ११-शोक १२
 १३-मिथ्यात्व १४-अज्ञान १५-निद्रा १६-अविगति १७-...
 १८ द्वेष रूप *] दोषों का आन्यन्ति भाव में—मर्कथा अपमान कर्त
 वोल-संसार के कारण भूत दोषों को मर्कथा मिटा देनेवाले, अन्न
 अक्षय और अनन्त आत्म लक्ष्मी के स्वामी, इन्द्रों के भी पूज्य
 देवाधिदेव, श्रीमान् धरनामक महाराजा की पट्टरानी श्रीमती सुमीन
 देवी के तनय हे पद्मप्रभ स्वामिन् ! हमेशा भरे लिये आप ही निष्क
 पट चित्त की प्रमत्तता से विधिपूर्वक द्रव्य और भाव से पूजा करने
 योग्य हैं ॥ १ ॥

दिव्य स्वरूप को धारण करनेवाले हे देव ! जिस भव्या
 त्माके हृदय कमल की ध्येयरूप में आपने सदैव सुशोभित किया है।
 हे जगदीश्वर ! तीनलोक में मैं उमी महान्मा को लोकोत्तर स्वरूप
 वाला, अत्यन्त पवित्र, और धन्यवादास्पद मानता हूँ ॥ २ ॥

*-अन्तराया दान-लाम-वीर्य-भोगोपभोगगाः ।

हासो रत्यन्ती भीतिर्जुगुप्सा शोक एव च ॥ ७२ ॥

कामो मिथ्यात्वज्ञानं निद्रा आविरतिस्तथा ।

रागो द्वेषश्च नो दोषास्तेषामष्टादशाप्यमी ॥ ७३ ॥

(अभिधानचिन्तामणि)

इसलिये जैंगे चर्पके मनोहर प्रकार को चकवा नामक पक्षी
 जाता है, वैंगे ही है परमप्रमथ्यामिन् । परम आनन्द का मन्दिर,
 छिन्न अर्पको देनेवाला, अस्पान्म मन्त्र योगियों को जानने योग्य-
 से आपके नाम का ही मैं अत्यन्त स्मरण करता हूँ ॥ ३ ॥

श्रीसुपार्श्व-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(तोटक-७८५)

जयवन्तमनन्तगुणैर्निभृतं,

पृथिवीसुतमद्भुतरूपभृतम् ।

निज-वीर्य-विनिर्जित-कर्मफलं,

सुरकोटिममाश्रितपत्कमलम् ॥ १ ॥

अनुवादः—‘जयवन्तं’—अद्वितीय जयलक्ष्मी को धारण
 करनेवाले ‘अनन्तगुणैः’—अनन्त प्राण-दर्शन-अव्याबाध समाधि
 शक्ति-अध्यात्मिक-अस्पृश्य अगुल्लघुत्व-वीर्य आदि अनन्त गु-
 णों से ‘निभृतं’—परिपूर्ण ‘पृथिवीसुतं’—श्रीमान प्रतिष्ठ नामक
 महागजा की पटुगर्भा धीमती पृथ्वीदेवी के अंगज ‘अद्भुत-रूप-
 भृतं’—अलौकिक रूपवाले ‘निजवीर्यविनिर्जितकर्मफलं’—अपनी
 ही शक्ति से प्राणावरणीय आदि आठ कर्मों को अनन्त कामेण वर्गणा को
 जीतनेवाले ‘सुरकोटिममाश्रितपत्कमलम्’—कम से कम एक
 छोड़ देवताओं से समाश्रित भवित चरण कमलवाले ॥ १ ॥

निरुपाधिक-निर्मलसौख्यनिधि,
परिवर्जितविश्वदुरन्तविधिम् ।
भववारिनिधेः परपारमितं,

परमोज्ज्वलचेतनयोन्मिलितम् ॥ २ ॥

अनुवादः—'निरुपाधिक निर्मलसौख्यनिधि'

व्याधि और उपाधिसे रहित, अधिक विशद सुख के
'परिवर्जितविश्वदुरन्तविधिं'—जिसका परिणाम-अत्यन्त दुः-
मय होता है ऐसे सांसारिक विधिव्यवहार को सर्वथा
'भववारिनिधेः परपारं-इतं'—संसार समुद्र के परले
पानेवाले, 'परमोज्ज्वलचेतनया-उन्मिलितं'
उज्ज्वल ज्ञानशक्तिसे विकशित ॥ २ ॥

कलधौत-सुवर्णशरीरधरं,
शुभपार्श्व-सुपार्श्वजिनप्रवरम् ।
विनयावन्ततः प्रणमामि सदा,

हृदयोद्भवभूरितर-प्रमुदा ॥ ३ ॥

(विशेषकम् ०)

—इस चैत्यचन्दन के-तीन श्लोकों में संबंध सूचक कि-
'प्रणमामि'] एकही प्रयुक्त की गई है। इस प्रकार के तीनों श्लोकों
।।दार्ष्टिक विद्वानों ने 'विशेषक' संज्ञा निरूपित की है। जैसे कि-

आधि-ध्याधि और उपाधि से रहित अधिक, विशद
 भण्डार, जगतके दुःखान्त विधिव्यवहारों को सर्वथा १०
 संसार समुद्र के परले पार पहुंचानेवाले, आवरण रहित उत्कृष्ट
 उज्ज्वल चैतन्य शक्ति से विकशित ॥ २ ॥

साफ किये हुए सुन्दर सुवर्ण के समान कान्ति पूर्ण
 शान्त परमाणुओं से बने हुए—वज्ररूपमनाराचसंहनन और मम
 चतुरस्र संस्थान विशिष्ट शरीर को धारण करनेवाले, ऐसे उत्तम
 निर्दोष पार्थदेश-पसवाडोंवाले-तीर्थंकर भगवान् श्रीसुपार्थ
 स्वामी को हृदय में पैदा होनेवाले परम प्रमोद में मैं हमेशा
 करता हूँ ॥ ३ ॥

श्रीचन्द्रप्रभ-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(वंशस्थ-वृत्तम्)

अनन्त-कान्ति-प्रकरेण चारुणा,

कालाधिपेनाश्रितमात्मसाम्यतः ।

जिनेन्द्र ! चन्द्रप्रभ ! देवमुत्तमं,

भवन्तमेवात्माहितं विभावये ॥ १ ॥

अनुवादः—'जिनेन्द्र'—हे मामान्य केवलियों में सुख

'चन्द्रप्रभ !'—चन्द्रके समान कर्पणीय कान्ति को धारण करनेवाले

रात्री नष्ट होजाती है, और 'दिनं'—दिन उदित होता है ॥ २

सदैव संसेवन-तत्परे जने,

भवन्ति सर्वेऽपिसुराः सुदृष्टयः ।

समग्रलोके समचित्त-वृत्तिना,

त्वयैव सञ्जातमतो नमोऽस्तु ते ॥ ३

अनुवादः—'सर्वे अपि सुराः'—इस संसार में ब्रह्मा-विष्णु-महेश-सूर्य-चन्द्र-इन्द्र आदि सभी देव 'सदैव'—निरन्तर 'संसेवन-तत्परे'—अपनी पूजा-भक्ति में तत्पर 'जने'—स्त्री पुरुषों 'सुदृष्टयः'—प्रसन्नदृष्टिवाले 'भवन्ति'—होते हैं। 'समग्रलोके'—निन्दक और वन्दक ऐसे समस्त प्राणियों में 'समचित्तवृत्तिना'—समान मनोवृत्ति-समदर्शी 'त्वया-एव'—आप से ही 'सञ्जात' हुआ गया है 'अतः'—इमलिये हे भगवान् 'ते'—आपको 'नमो-नमस्कार 'अस्तु'—हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अपनी समानता से अत्यन्त शान्त कान्ति के समुदाय को धारण करनेवाले मनोहर चन्द्रमण्डल के लाल्छन से आश्रित हुए, आपको ही मैं आत्महितैषी परमोत्तम देव मानता हूँ ॥ २ ॥

हे परम आदर्श चारित्र्य गुणोंके भण्डार ! नैयायिक आदि दर्शनियों के माने हुए, जगत्कर्तृत्व-आदि भावों से रहित होने भी विश्वस्वामित्व को धारण करनेवाले हे जगत्प्रभो ! आपके

रात्री नष्ट होजाती है, और 'दिनं'—दिन उदित होता है ॥ २ ॥

सदैव संसेवन-तत्परे जने,

भवन्ति सर्वेऽपिसुराः सुदृष्टयः ।

समग्रलोके समचित्त-वृत्तिना,

त्वयैव सञ्जातमतो नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥

अनुवादः—'सर्वे अपि सुराः'—इस संसार में ब्रह्मा-विष्णु-महेश-सूर्य-चन्द्र-इन्द्र आदि सभी देव 'सदैव'—निरन्तर 'संसेवन-तत्परे'—अपनी पूजा-भक्ति में तत्पर 'जने'—स्त्री पुरुषों में 'सुदृष्टयः'—प्रसन्नदृष्टिवाले 'भवन्ति'—होते हैं। 'समग्रलोके'—निन्दक और बन्दक ऐसे समस्त प्राणियों में 'समचित्तवृत्तिना'—समान मनोवृत्ति-समदर्शी 'त्वया-एव'—आप से ही 'सञ्जातः'—हुआ गया है 'अतः'—इसलिये हे भगवान् 'ते'—आपको 'नमः'—नमस्कार 'अस्तु'—हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! अपनी समानता से अन्तःशान्त कान्ति के समुदाय को धारण करनेवाले मनोहर चन्द्रमा के लाल्छन में आश्रित हुए आपको ही मैं आत्महितैषी परमोत्तम दृश्यस्वरूपवाले देव मानता हूँ ॥ २ ॥

हे परम आदर्श चारित्र्य गुणोंके भण्डार ! नैयायिक आदि दर्शनियों के माने हुए, जगत्कर्तृत्व-आदि भावों से रहित होने भी विश्वस्वामिन्व को धारण करनेवाले हे जगत्प्रभो ! आपके

और वन्दन करने योग्य हे जगद्वन्द्य ! 'मकराङ्कित-पाद-पद्म !'-
 मगर मच्छ के लाञ्छन से लाञ्छित चरण कमलवाले हे भगवन् !
 'सुग्रीव जात'-श्रीमान् सुग्रीव नामक राजाधिराज के तनय
 हे श्रीसुविधिनाथ स्वामिन् ! 'जिन-पुङ्खव !'-तीन भद्र पहले वीस-
 स्थानक महातप की आराधना करके तीर्थकर नाम कर्म को पैदा
 करनेवाले हे जिनेन्द्र ! 'शान्ति-सद्म'-हे शान्ति के मन्दिर !
 'भव्यात्म-तारण-परोत्तम-यानपात्र !'-भवसमुद्र में डूबे
 हुए मोक्षके अधिकारी-भव्यात्माओं को तिराने के लिये तत्पर निश्छिन्न
 मजबूत और उत्तम एंमे-जहाजरूप हे तीर्थनाथ ! 'विरूपात्'-
 विकृत रूपवाले-भयङ्कर 'भव-चारिनिधेः'-संसार सागरसे 'मां'-
 मुझको 'तारयस्व'-तिराइये-पार कीजिये ॥ १ ॥

निःशेष-दोष-विगमोद्भव-मोक्ष-मार्गं

भव्याः श्रयन्ति भवदाश्रयतो मुनीन्द्र !।

संसेवितः सुरमणिर्बहुधा जनानां,

किं नाम नो भवति कामिन सिद्धिकारी ! ॥२॥

अनुवादः— 'मुनीन्द्र !'- हे मुनियों के स्वामी-
 श्रीपुण्ड्रन्त-भगवान् ! 'भवदाश्रयतो'-आपके आश्रय
 से-अमाधारण-निमित्त काण को प्राप्त करके 'भव्याः'-जन्म
 मरण से मुक्त होने की इच्छावाले भव्यजीव 'निःशेष-दोष-
 विगमोद्भव-मोक्ष-मार्गं'-अज्ञानादि समस्त दोषों के विहीन

नाथ ! [आप मेरे लिये] ' तथा विघेहि '- ऐसा करदे कि 'अहं'-में 'शब्द'- प्रतिक्षण 'तव'-आपके 'दर्शन-वद्भक्तः'- दर्शन का प्रेमी ' भवामि '-होऊं-बना रहूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—तीनों जगत् के स्तुति और वन्दन करने योग्य हे—जगद्वन्द्य ! मगर मच्छ के लाञ्छन से लाञ्छित चरण कमलवाने हे—भगवन् ! श्रीमान् सुग्रीव नामक राजाधिराज के तनय हे श्रीसुविधिनाथ स्वामिन् ! तीन भव पहले वीमस्थानक महातप की आराधना करके तीर्थकर नाम कर्म को पैदा करनेवाले हे जिनेन्द्र ! हे शान्ति के मन्दिर ! भवसमुद्र इचते हुए मोक्षके अधिकारी भव्यात्माओं के तिराने के लिये निश्छिद्र-मज्जबूत और उत्तम ऐसे जहाज रूप हे तीर्थनाथ ! विकृत रूपवाले भयंकर संसार सागर से मुझको पाव कीजिये ॥ १ ॥

हे मुनियों के स्वामी श्रीपुष्पदन्त भगवान् ! आपके आश्रय रूप-असाधारण निमित्त को पाकर मुमुक्षु-भव्य जिव अज्ञानादि समस्त दोषों के विलीन होजाने में पैदा होनेवाले मुक्ति मार्ग को पाते हैं । फिर उनका संसार में आवागमन नहीं होता । बहुत प्रकार में सेवन किया हुआ महामहीमशाली चिन्तामणि क्या मनुष्यों की कामना मिट्टिको नहीं करता है ? जरूर करता है । वैसे ही आप की प्रहण रूप सेवा भव्यात्माओं की मिट्टि को करती ही है ॥ २ ॥

हे सुविधिनाथ स्वामी ! उस प्रकार के काल-स्वभाव नियति-पूर्वकृतकर्म और पुरुषार्थ आदि कारणों के मिलने पर परोपदेश

पियशःकलाप-कलितं'—संसारव्यापी यशः समूह से युक्त
 'कैवल्य-लीलाश्रितं'—केवल ज्ञान की अनन्त लीलाओं से
 बोधजनित आनन्द की अवस्थाओं से आश्रित, 'नन्दा-कुक्षि
 समुद्भवं'—श्रीमती नन्दा महाराणी की कुक्ष से पैदा होने वाले
 'दृढरथ-क्षोणीपतेर्नन्दनं'—श्रीमान् दृढरथ नामक भूपति के नन्दन
 'जिनवरं'—तीर्थंकर देव 'शीतलं-प्रभुं' श्रीमत्शीतलनाथ स्वामी
 को 'वन्दे'—मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

विश्वज्ञानविशुद्धसिद्धिपदवीहेतुप्रबोधं दधद्,
 भव्यानां वरभक्ति-रक्तमनसां चेतः समुल्लासयन् ।
 नित्यानन्द-मयः प्रसिद्धसमयः सद्भूतसौख्याश्रयो
 दुष्टानिष्टतमः प्रणाशतरणिर्जीयाजिनः शीतलः ॥२॥

अनुवादः—'विश्वज्ञान-विशुद्धसिद्धिपदवीहेतु-प्रबोधं'
 पूर्ण ज्ञान से विशुद्ध-पुनर्जन्म आदि दोषों से रहित ऐसी . १५.
 समाधि स्वरूप सिद्धि पदवी के अमाधारण कारणभूत प्रकृष्ट क्रियात्मक
 बोध को 'दधद्'—धारण करने हुए, 'वरभक्तिरक्त-मनसां'-
 मरुता पूर्ण प्रधान विनय भक्ति में अनुरक्त मनवाले 'भव्यानां'
 प्राणियों के 'चेतः'—चित्त को 'समुल्लासयन्'—विशुद्धि
 करते हुए—मोक्ष के अनुकूल बनाने हुए, 'नित्यानन्दमयः'-
 अनश्वर-शाश्वत अनन्त आनन्द से पूर्ण, 'प्रसिद्धसमयः'—नर
 और प्रमाणां से प्रमाणित प्रसिद्ध सिद्धान्त के प्रणेता, 'सद्भूत-सौ'



अपने छल-बल की चचलाहट से भयंकर स्वरूपवाली 'दुष्टा'-
दुर्गति के हेतुभूत कल्पित स्वभाववाली, ऐसी 'मम'-मेरी 'म्वनिष्टक
दृष्टिना'-आत्मा में रही हुई कुदृष्टिता अशुद्धपरिणति कुमति 'मद्यः
एकदम 'अपचिनमहा'-अतहाय मात्र से निर्बल 'भूत्वा'-है
कर 'ममग्रनया'-सर्वतोभावेन-सर्वथा 'दूरंध्यपगतवती'-दूर
चली गई-समूल नष्ट होगई ॥ १ ॥

निरुपमसुखश्रेणी-हेतुनिराकृतदुर्दशा,

शुचितर-गुणग्रामावासा निसर्गमहोज्वला ।

हृदय-कमले प्रादुर्भूतासुतत्त्वरुचिर्मम,

विदलित-भवभ्रांतयस्याप्यजस्रमनुस्मृतेः ॥ २ ॥

अनुवादः—'अजस्रं'-हमेशा 'यस्य अनुभूतेः'-जिन
का स्मरण-ध्यान करने से 'अपि'-भी 'निरुपम-सुखश्रेणीहेतुः'
उपमातीत-अपूर्व सुखममूह की साधना में असाधारण कारणभूत,
'निराकृत-दुर्दशा'-दुर्गति जन्य दुर्दशा को हटानेवाली, 'शुचि-
तरगुणग्रामावासा'-अन्यन्त पवित्र गुणगण की निरासभूमि
'निसर्गमहोज्वला'-स्वभाव से ही अन्यन्त उज्वल और 'विद-
लितभवभ्रांतिः'-अनन्त भव भ्रमण को मिटानेवाली ऐसी,
'सुतत्त्वरुचिः'-सम्यक् तत्त्वरुचि-शुद्ध चेतना 'मम'-मेरी 'हृदय-
कमले'-हृदय कमल में 'प्रादुर्भूता'-प्रकट हुई है ॥ २ ॥

होगई ॥ १ ॥

हमेशा जिनका ध्यान करने से निरुपम सुखश्रेणियों की उत्पत्ति में हेतुभूत, दुर्गति जन्य दुर्दशा को हटाने वाली, शुचिता-गुण समूह की निवाम भूमि, स्वभाव से ही महोज्ज्वल, और अनल भव अमण को मिटाने वाली यथार्थ तत्त्वरुचि मेरे हृदय कमल में प्रकट हो गई ॥ २ ॥

जो परोपकार बुद्धि वाले, दान देने में दक्ष, जगत की व्यथा को हरनेवाले, यथायोग्य विशिष्ट क्रिया वाले, ज्ञानभानु से मोक्षमार्ग को प्रकाशित करने वाले और राजाधिराज श्रीविष्णु महा-गजा के वंशाकाश में प्रमाकर-सूर्य के समान उदित हुए, वे ग्यारहों तीर्थंकर श्रीश्रेयांसनाथ स्वामी मेरी प्रबोध समृद्धि को बढ़ाने वाले हैं ॥ ३ ॥

श्रीवामुपृज्य-जिन-चैत्यवन्दनम्

(रघोदत्ता-छन्दः)

पूर्ण-चन्द्र-कमनीय-शीधिति-

श्राजमानमुत्तमदूभुतश्रियम् ।

शान्त-दृष्टिमभिरामचोष्टितम्

शिष्टजन्तु-परियेष्टिनं परम् ॥ १ ॥

अनुवादः—' पूर्णचन्द्रकमनीषशीधिति-प्राजमानमु-
 श्व'-सगद श्रुतु की पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के जंगी कान्त-कांति
 विगलित सुगरवाले, ' अद्भुतधिपं '-आश्चर्यजनक अष्टमहाप्रातिदा-
 कांतिविशिष्ट-दिव्य लक्ष्मी को धारण करने वाले, ' शान्तदृष्टि '-
 आनन्दप्रदानकीन प्रशान्त दृष्टिवाले, ' अशिरामचेष्टिनं '-मनोहर
 चेष्टाओं वाले, ' शिष्टजन्तुपरिचेष्टिनं '-दृढादृष्टिविषेपी-भष्या-
 त्माओं में उपाविष्ट ' परं '-और अन्धकार से परे-परम उत्कृष्ट
 स्वरूपवाले ॥ १ ॥

नष्ट-दुष्टमतिभिर्यमीश्वरं,

संस्मरद्भिरिह भूरिभिर्नृभिः ।

क्षीणमोहसमयादनन्तरा,

प्रापि सत्यपरमात्म-रूपता ॥ २ ॥

अनुवादः—' यं ईशं '-और ऐसे जिन ईश्वर को ' संस्म-
 रद्भिः '-स्मरण करने वाले, ' नष्ट दुष्ट मतिभिः '-नष्ट होगई है
 दुष्टमतिजिनकी ऐसे ' भूरिभिः '-बहुत से ' नृभिः '-मनुष्यता को
 पाण करने वाले भष्यात्माओं ने ' क्षीणमोहसमयाद् अन्तरा '-
 एकान्तिक भाव से गगन द्वेपरूप मोह के क्षीण होजाने पर क्षीणमोह-
 नामक बारहवें गुण स्थानक के बाद ' सत्य-परमात्मरूपता '-
 पथार्थ परमात्म स्वरूप को ' प्रापि '-पा लिया है ॥ २ ॥

पार्थिवेश-वसुपूज्यवेशमनि,

प्राप्तपुण्यजनुषं जगत्प्रभुम् ।

वासुपूज्य-परमेष्ठिनं सदा,

के स्मरन्ति नहि तं विपश्चितः ॥ ३ ॥

अनुवादः—‘तं’—उन ‘पार्थिवेश-वसुपूज्यवेशमनि’ राजराजेश्वर श्रीमान्-वसुपूज्य महाराजा के घर में ‘प्राप्तपुण्यजनुषं’—पवित्र जन्म को पानेवाले, और ‘जगत्प्रभुं’—तीन जगत् के नाथ ‘वासुपूज्य-परमेष्ठिनं’—बाहरसे तीर्थकर श्रीवासुपूज्य परमेष्ठि परमेश्वर को ‘के विपश्चितः’—कौन पंडित ‘सदा’—हमेशा ‘नहि’ नहीं ‘स्मरन्ति’—स्मरण करेंगे ? अथितु अवश्य ही स्मरण करेंगे ॥३॥

भावार्थः—शुद्ध ऋतु की पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र की कमनीय कान्ति से विराजित मुखवाले, दिव्य लक्ष्मी को धारण करने वाले, प्रशान्त दृष्टिवाले, मनोहर चेष्टाओं वाले, गिष्टजनों से परिवेष्टित और उन्मृष्ट स्वरूपवाले ॥ १ ॥

ऐसे जिन प्रभु का स्मरण करने वाले बहुत से गुणति मनुष्यों ने शीणमोह गुण ध्यानरु के बाद यथार्थ रूप से परमात्म अवस्था को प्राप्त की है ॥ २ ॥

उन राजराजेश्वर श्रीवसुपूज्य महाराजा के घरमें पवित्र जन्म लेनेवाले त्रिजगत् के स्वामी श्रीवासुपूज्य परमेश्वर का ध्यान हमेशा कौन नहीं करेगा ? अर्थात् हमेशा करने हैं ॥ ३ ॥

धाम'-सत् और असत् के विवेक रूप ज्ञान के प्रकाश को 'अहं'-
में 'संप्राप्तः'-पा गया हूँ ॥ १ ॥

ये तु स्वामिन् ! कुमतिपिहितस्फारसद्बोधमूढाः,
सौम्याकारां प्रतिकृतिमपि प्रेक्ष्य ते विश्वपूज्याम् ।
द्वेषोद्भूतेः कलुषितमनोवृत्तयः स्युः प्रकामं,
मन्ये तेषां गतशुभदशां का गतिर्भाविनीति ॥ २ ॥

अनुवादः—'स्वामिन्' हे प्रभो ! 'ये'-जो नाम, सापण
और द्रव्य निशेषा का अपलाप करनेवाले 'कुमति--पिहितस्फार
सद्बोधमूढाः'-दुर्मति से--दर्शनमोहनीय कर्म के आवरण से
उज्ज्वल आत्मबोध के नष्ट प्राय होजाने से मूढता को धारण करने
वाले जिनाज्ञा से बहिर्भूत मतवाले 'ते'-आपकी 'सौम्याकारां'-
राग द्वेष रहित परम शान्त आकारवाली, और 'विश्वपूज्यां'-
तीन लोक के पूजनीय 'प्रतिकृतिं'-प्रतिमा को 'प्रेक्ष्य'-देख
करके 'अपि'-भी 'द्वेषोद्भूतेः'-द्वेषोत्पत्ति से 'प्रकामं'-अत्यन्त
'कलुषितमनोवृत्तयः'-दुष्ट चित्तवृत्तिवाले 'स्युः'-होते हैं
'इति मन्ये'-मैं यह सोचता हूँ कि 'तेषां'-उन 'गतशुभदशां'-
विवेक चक्षुके चले जाने से-अज्ञानान्ध पुरुषों की 'का गतिः'-
गति 'भाविनी'-होगी ? अर्थात् किम दुर्गति में वे लगे
? ॥ २ ॥

इयामासूनो ! प्रतिदिनमनुमृत्य विज्ञानियाययं

हे प्रमो ! जो नाम-स्यापना और द्रव्य निक्षेपा का जालाप करनेवाले, दर्शनमोहनीय कर्म के आवरण से उज्ज्वल आत्मबोध के नष्टप्राय होजाने से मूढता को धारण करनेवाले जिनाङ्गाने बहिर्भूत मतवाले आपकी रागद्वेष रहित परम शान्त आकारवाली विश्वपूज्य प्रतिमा के दर्शन करके भी द्वेषके बशीभूत होकर अत्यन्त दुष्ट मनवाले होजाते हैं । हा इति खेदे ! मैं सोचता हूँ उन अज्ञान से अन्धे पुरुषों की भविष्य में क्या गति होगी ? ॥ २ ॥

श्रीमती श्यामाराणी के पुत्र हे श्रीविमलप्रमो ! हमेशा विशिष्ट ज्ञानी पुरुषों के अविसंवादी सिद्धान्त वचनों को सुनकरके अहित करने वाले मिथ्यात्वियों के वचनों का त्याग कर पूर्णानन्द से विकशित हृदयवाले जो भव्य प्राणी आपका विधिपूर्वक आराधन करते हैं । वे महानुभाव ही पशंसनीय आचारवाले, सौभाग्य प्रकृतिवाले और धन्यवाद के पात्र हैं ॥ ३ ॥

श्रीअनन्तनाथ-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(ऋग्विणी छन्दः)

यस्य भव्यात्मनो दिव्यचेतो गृहे

ॐ सर्वदानन्तचिन्तामणीर्व्योतते ।

* सर्वदा-हमेशा, सर्वद-अनन्तचिन्तामणिः-सब प्रकारके वाञ्छितों को देनेवाले अनन्तनाथरूप चिन्तामणि रत्न । ऐसे 'सर्वदा' और 'सर्वद' दो प्रकार से पदार्थ होता है ।

निष्कपट भावों से 'धीक्ष्यः'-दर्शनकर 'अद्भुतामोदमन्द्रोः
सम्पूरितः'-अपूर्व हर्ष की अधिकतासे रोमाञ्चित होता हुआ
'आत्मीयनेत्रद्वयं'-अपने दोनों नेत्रों को 'धन्यं'-धन्य-कृतार्थ
'मन्यते'-मानता है ॥ २ ॥

सोऽपवर्गानुगामि स्वभावोज्ज्वलां

व्यूढमिथ्यात्वविद्रावणे तत्पराम् ।

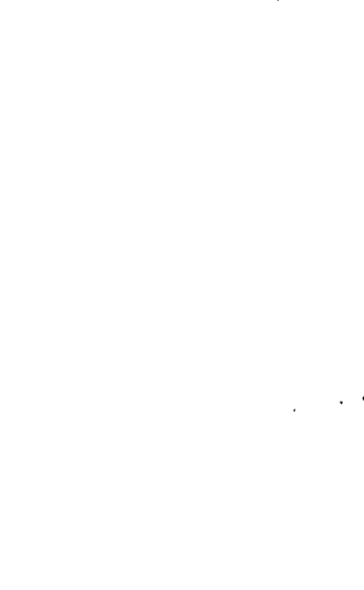
पन्धुरात्मानुभूति-प्रकाशोद्यतां

शुद्धसम्यक्त्वसम्पत्तिमालम्बते ॥ ३ ॥

(पुगलम्)

अनुवादः—'सः'-दूररे श्लोक वर्णित स्वरूपवाला वही
मध्यात्मा 'अपवर्गानुगामिस्वभावोज्ज्वलां' मोक्ष के अनुकूल
रामार से उज्ज्वल 'व्यूढमिथ्यात्वविद्रावणे तत्पराम्'-चिन्तान
से विशेषतया आत्मगुणोंका घात करनेवाले अतएव भद्धानरूप
मिथ्यात्व को नाश करने में तत्पर, और 'पन्धुरात्मानुभूति-प्रका-
शोद्यतां' मुन्दर आत्मानुभव के प्रकाशसे पूर्ण ऐसी 'शुद्धसम्यक्त्व-
सम्पत्तिं'-निश्चय और प्यरकार इन दोनों नयों से निर्दोष भा-
वाने मन्वार्थ भद्धानरूप-गम्यकत्व की सम्पत्ति को 'आलम्बते'-
प्राप्त होता है ।

भाषार्थ—जिम मध्यतीर के अलौकिक मनो मन्दिर में धीप्र-
काश के ध्यान रूप चिन्तामणि रत्न हमें प्राप्ति प्राप्त होता



अनुवादः—‘भास्वज्ज्ञानं’—वज्र की दीवारों में भी अस्स-
 लितगति-प्रकाशमान ज्ञानवाले, ‘शुद्धात्मानं’—रागद्वेष से रहित
 अपुनर्भव-शुद्धस्वरूपवाले, ‘धर्मेशानं’—दुर्गति में पडते हुए प्राणियों
 को बचानेवाले धर्म के स्वामी, ‘सद्ध्यानं’—केवल आत्म ध्यान
 को ही करनेवाले, ‘शक्त्यायुक्तं’—अनन्त शक्तिवाले, ‘दोषो-
 न्मुक्तं’—कर्म-क्लेश-विपाकों से मुक्त हुए ‘तत्त्वासक्तं’—अरिहंत
 अवस्था में नवतत्त्वों की और पद् द्रव्यों की प्ररूपणा करनेवाले,
 ‘सद्भक्तं’—मोक्ष के अधिकारी इन्द्र आदि भक्तोंवाले ‘शश्वत्-
 शान्तं’—प्रतिहूल परिस्थिति में भी हमेशा शान्त रहनेवाले, ‘की-
 र्त्या कान्तं’—लोक व्यापिनी-विशिष्ट गुणजन्य कीर्ति से कान्त
 स्वरूपवाले ‘ध्वस्तध्यानं’—आत्म षल से और पवित्र उपदेशों से
 मृमृशुओं के अज्ञानान्धकार को नाश करनेवाले ‘विश्रामं’—त्रिवि-
 धतापसंतप्त प्राणियों के आधार भूत ‘शिक्षादेशं’—दुष्ट अभिनिवेशों-
 को कपायों के आदेशों को हटानेवाले ‘मत्यादेशं’—अविसंबादी
 हितकारी आज्ञाओं को देनेवाले ऐसे ‘श्रीधर्मेशं’—श्रीधर्मनाथ स्वामी
 को हे मध्य प्राणियों ! ‘वन्दध्वं’—वन्दन करो ॥ १ ॥

निःशेषार्थप्रादुर्कर्त्ता सिद्धेर्भर्त्ता संधर्त्ता,

दुर्भाशानां दूरं हर्त्ता दीनोद्धर्त्ता संम्मर्त्ता ।

सद्भक्तेभ्यो मुक्तर्दाना विश्वप्राता निर्माता,

मृतुर्यो भक्त्या याचोयुक्त्या चनोष्ट्याच्येयारमा ॥२॥

‘मोहास्पृष्टः’—जो मोहकर्म से सर्वथा अछूत है, ‘स्रोतोप्राप्तः’—जो इन्द्रियों के विषयों से ‘आकृष्टः’—सर्वादि हुए ‘न’—
 ‘सम्पज्जयेष्टः’—जो तीर्थंकर नाम कर्मकी पुण्य प्रकृति से और आत्मसम्पत्ति से बड़े चढ़े हैं, ‘साधुश्रेष्ठः’—जो साधुओं में श्रेष्ठ हैं, ‘सत्प्रप्रेष्टः’—जो मज्जनों के अत्यन्त प्यारे हैं, ‘श्रद्धायुक्तस्वान्तः’—जो श्रद्धा सहित मद्भावना से पूर्ण हृदयवाले भव्यात्माओं से सेवित।
 ‘नित्यं-तुष्टः’—जो हमेशा सन्तुष्ट रहते हैं, ‘निर्दुष्टः’—जो दुष्टता से सर्वथा रहित हैं ऐसे ‘नष्टानङ्कः’—भयको नाश करनेवाले
 ‘श्रीवज्राङ्कः’—वज्रका लंछन धारण करनेवाले श्रीधर्मनाथ स्वामी
 ‘निश्शङ्कः’—शंका रहितभावसे दृढताके साथ ‘नैव-त्याज्यः’—
 त्याग करने योग्य नहीं हैं अर्थात् स्वीकार करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—वज्र की दीवारों से भी अस्खलितगति-प्रकाशमान ज्ञानवाले, शुद्धस्वरूपवाले, धर्म के स्वामी, केवल आत्मध्यानको ही करनेवाले, अनन्त शक्तिवाले, कर्म क्लेश विपाकाशयों से मुक्त, तत्त्वों की प्ररूपणा में आसक्त, इन्द्र आदि भक्तोंवाले, हमेशा शान्त रहनेवाले, कीर्ति से कान्त स्वरूपवाले, अज्ञानान्धकार को नाश करनेवाले, आधारभूत, आवेशों को हटानेवाले, हितकारी आज्ञावाले, श्रीधर्मनाथ स्वामी को हे भव्यात्माओं ! चन्दन करो ॥ १ ॥

आत्मा के ममस्त अर्थों को व्यक्त करनेवाले,—सिद्धि के
 १, रक्षा करनेवाले, दुर्मायों को मिटानेवाले, दीन प्राणियों के

सूतः' जो देवेन्द्रों से यन्दित हैं, 'लघु विनिर्जित-मांघराधिपः'—और जिनने मोहनीयकर्मरूप राजाधिराज को स्रष्टृ जीत लिया है, वे 'प्रभुगान्तिजिनाधिपः'—सोलहवें तीर्थं श्रीशान्तिनाथ स्वामी 'जगति'—जगत में 'जयति'—त्रयं वर्त्तते हैं ॥ १ ॥

विहितशान्तसुधारसमज्जनं,

निखिल-दुर्जयदोषविवर्जितम् ।

परमपुण्यवतां भजनीयतां,

गतमनन्तगुणैः सहितं सताम् ॥ २ ॥

अनुवादः—'विहितशान्तसुधारसमज्जनं'—अमृत के जैसे परम शान्त रस में डुबकी लगानेवाले, 'निखिलदुर्जयदोषविवर्जितं'—दुःखसे जीते जाय ऐसे काम क्रोध आदि सम्पूर्ण दोषों से रहित, 'परमपुण्यवतां'—उत्कृष्ट पुण्यवाले सज्जनों के 'भजनीयतां-गतं'—सेवा करने योग्य पद को पाये हुए 'अनन्तगुणैः-सहितं'—धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय नामक द्रव्यों में स्कन्ध और देश के अविभागीभाग प्रदेश अनन्त होने हैं। उन प्रत्येक प्रदेशों में अनन्त २ पर्याय अवस्था विशेष होते हैं। उन अनन्त २ पर्यायों के विशेष धर्म को भगवान् अपने केवल ज्ञानमें और मामान्य धर्म को केवल दर्शन में जानते हैं। इस लिये केवल ज्ञान केवल दर्शन



विशुद्ध चेतनावाले हे पारगत ! 'चारु-चारित्र्य-पवित्रित-लोक !'-
 अपने सत्य शिव और सुन्दर चरित्र से लोक को पवित्र बनानेवाले हे
 मार्गदर्शक ! 'विशुद्ध !' अपने आप विशिष्ट बोध को पानेवाले
 हे स्वयंसंयुद्ध ! 'निरूपम मेरुमही-घरघरि'—अद्वितीय मेरु पर्वत के
 जैसी धीरतावाले हे देवाधिदेव ! 'निरंतरं-एव'—हमेशा 'गर्ववि-
 वर्जित-सर्व-सुपर्व-विनिर्मित-सेव !' अमिमान रहित निष्कण्ठ
 भाव से सब सुर और असुरों से सेवित हे तीर्थनाथ 'जय जय !'-
 आपकी जय हो, जय हो ॥ २ ॥

जय जय सूरनरेश्वरनन्दनचन्दनकल्प !,
 जिनेश ! विश्वविभाव-विनाशक धीतविकल्प !
 निर्मल-केवल-बोधविलोकित-लोकालोक !,
 प्रादुर्भूत-महोदय-निवृत्ति-नित्य-विशोक ! ॥ ३ ॥

अनुवादः—'सूरनरेश्वरनन्दन !—चन्दन-कल्प !'-
 हे सूरनामक राजाधिराज के पुत्र रत्न ! त्रिविधताप को मिटाने के
 लिये हे चन्दन के समान 'जिनेश !' हे तीर्थनाथ ! 'विश्वविभाव
 विनाशक धीतविकल्प !' आत्मा से भिन्न संसार के मायावी
 परिणामों का नाश करनेवाले हे कल्पनातीत-अचलस्वरूपवाले नाथ !
 'निर्मलकेवल-बोध-विलोकित-लोकालोक !'—प्रकाशमय केवल-
 ज्ञान से लोक और अलोक के भावों को जाननेवाले हे सर्वज्ञ !
 'प्रादुर्भूत-महोदय-निवृत्ति-नित्य-विशोक !'—उत्पन्न-दुर्

श्रीअर-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(रामगिरि-रागः)

दिव्यगुण-धारकं भव्यजनतारकं ॐ,
 दुरितमतिवारकं सुकृतिकान्तम् ।
 जितविषमसायकं, सर्वसुखदायकं,
 जगति जिननायकं परमकान्तम् ॥ १ ॥

अनुवादः—‘अर!’—हे अरनाथ स्वामी ! ‘भव्यजनता-सुसुधु जन समुदाय ‘दिव्यगुणधारकं’ दिव्यगुणों को धार करनेवाले, ‘भव्यजनतारकं’ भव्यात्माओं को तिरानेवाले, ‘दुरितमतिवारकं’ पाप बुद्धि को हटानेवाले ‘सुकृतिकान्तं’ पुण्यात्माओं के प्यारे, अथवा पुण्यकृतियों से मनोहर स्वरूपवाले ‘जितविषमसायकं’—विषमसायक—कामदेव को जीतनेवाले, ‘सर्वसुखदायकं’ अनन्त सुखों को देनेवाले, ‘जिननायकं’—चौतीस अतिशयादि महाप्रभुतावाले ‘जगति परमशान्तम्’ जगत् में परम शान्त स्वरूपवाले आपको नमस्कार करके ‘कं’ सुख को प्राप्त करने हैं ॥ १ ॥

* काकाक्षिगोलकन्याय से ‘भव्यजनतारकं’ पद एकवार प्रभु के विशेषण रूप से धार दुभरी वार पदच्छेद करने पर कर्ता सम्बोधन और कर्मरूप से भर्ष करना चाहिये । ‘भव्यजनता-अर-कं’ इति पदच्छेदः । (धनुषादिका)

शिवमही-सार्वभौमप्रधानम् ॥ दिव्य० ३ ॥

× (विभिधिशेषकम्)

अनुवादः—‘साधुदर्शनघृत्’—पवित्र दर्शनराले ‘भास्कि-
कः’—मन्यात्माओं से स्तुति किये हुए ‘प्रातिहार्याष्टकोद्गासमानं’
आठ महाप्रातिहार्यों से विराजमान ‘मततनुक्तिप्रदं’—नित्य
मुक्ति को देनेवाले ‘सर्वदा’—हमेशा ‘पूजितं’—स्वामारिक पूत
अस्थाराले ‘शिवमहीसार्वभौमप्रधानं’—कल्याण भूमी के
गरे श्रेष्ठ सार्वभौम-मन्त्रार्-चकप्रति और तीर्थंकर पद को पानेवाले
एसे ‘अरकं’—अटगहये तीर्थंकर श्री अरनाथ भगवान् को—‘नौदि-
नमन्तार करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे अरनाथ भगवन ! मुमुक्षु जनममुदाय दिव्य
गुण को धारण करनेवाले, मय्यज्ञनों को निगनेवाले, पाप बुद्धि को
हटानेवाले, पुण्यात्माओं के प्यारे-पुण्य प्रकृति से मुन्दर स्वस्थाने,
कामदेवकी जीतनेवाले, मय्य गुणों को देनेवाले, महाप्रभुताओं
और जगत में परमगान्त स्वस्थाने आपको नमन्तार करके गुणों
प्राप्त करने हूँ ॥ १ ॥

श्री आत्मा के ज्ञानादि गुणों में और उनके अत्यन्त प्रसन्न
अथवा शान्ति पर्यायों में एकत्र होकर होते हैं, वृद्धलादि पर वृद्धों के
परिश्रम से रहित स्वभाववाले हैं, एक अनादिगण पदवाले हैं, जो

× यह पद्य श्री अरनाथ भगवान् पर लिखा जाय तो यहाँ श्री
अरनाथ के ‘नौदि’ । इस लिये इसकी विशेषता लक्ष्य है ।

प्रकाशपूर्ण * ज्ञान वाले हे सर्वत्र ! ' निजविक्रमजितमोहमहो-
द्भटभूपते !'-दूमरे के बल की पर्या न कर अपने ही बल पौरुष से उच्च
खल ऐसे मोहगजाको जीतनेवाले हे वीतराग ! ' श्रीपद्मानु-
जान !'-श्रीसुमित्रमहाराजा की पट्टराणी श्रीमती पद्मादेवी के पुत्र
रत्न हे शंभो ! ' सुजानहरिदृशुने !'-मनोहर हरित कान्ति को
धारण करनेवाले हे पुरुपोत्तम ! ॥ १ ॥

श्रीमुनिसुव्रतसुव्रतदेशक ! सज्जनाः,
कृतसद्गुरुशुभवाक्य-सुधारसमज्जनाः ।
ये प्रणमन्ति भवन्तमनन्तसुखाश्रितं
केवलमुज्ज्वलभावमखण्डमनिन्दितम् ॥ २ ॥

अनुवादः—' सुव्रतदेशक ! श्रीमुनिसुव्रत !'-अहिंसा-
सत्य-अचौर्य ब्रह्मचर्य-अममत्व आदि सदाचारों का उपदेश देनेवाले
हे श्रीमुनिसुव्रतप्रभो ! 'कृतसद्गुरुशुभवाक्यसुधारसमज्जनाः'-
सद्गुरुओं के पवित्र उपदेशरूप अमृत में स्नान करनेवाले 'ये'-
जो 'सज्जनाः'-सज्जन 'अनन्तसुखाश्रितं'-अनन्तसुखवाले
∴'-अद्वितीय निर्द्वन्द्वभाववाले 'उज्ज्वलभावं'-निर्मलपरि-

* यहाँ 'विलम्बमनि'-का अर्थ विनिष्ट ज्ञान करना ही उचित
क्योंकि क्षायिक भाव में केवलज्ञान के होने पर दूमरे छाप्रस्थिक
ज्ञान रहते ही नहीं, जैसे कि सूर्य के प्रकाश में अन्य ग्रहों का प्रकाश
होता ही नहीं । कर्मसंग्रहपत्र ।

मुद्रत-मदाचारों का उपदेश देनेवाले हे श्रीमुनिमुद्रतप्रभो !
सद्गुरुओं के पवित्र उपदेशामृत में मज्जन करनेवाले जो मज्जन
अनन्त सुखवाले अद्वितीय स्वभाववाले निर्मल परिणामवाले अखण्ड
स्वरूपवाले अकुत्सित जीवनवाले आपको प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

वे भव्य-भक्त लोग निस्सन्देह तीनों जगतसे सादर वन्दित
और आनन्दित होते हैं । 'जैसा कार्य होनेवाला होता है—वैसे ही
स्वरूपाविरोधी असाधारण कारण भी पैदा हो जाते हैं' यह प्राकृतिक
नियम है । ॥ ३ ॥

श्रीनिमि-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(पञ्चचामर-छन्दः)

नमीश ! निर्मलात्मरूप ! सत्यरूप ! शाश्वतं,
परोर्ध्वसिद्धिसौधमूर्ध्नि सत्स्वभावतः स्थितम् ।

विधाय मानसावजकोश-देश-मध्यवर्तिनं,

स्मरामि सर्वदा भवन्तमेव सर्वदर्शिनम् ॥ १ ॥

अनुवाद.— 'निर्मलात्मरूप !'—हे पवित्र आत्मस्वभाववाले,

'सत्यरूप'—हे मन्त्रे स्वरूपवाले स्वामी ! 'नमीश !'—परीप-

को नमानेवाले अथवा भगवान के गर्भ में आने पर पर-

ओंने नमन किया था ऐसे गुणवाले हे नमिनाथ प्रभो !

अधिनाशी, 'परोर्ध्वसिद्धिसौधमूर्ध्नि सत्स्वभावनः

मुद्रत-मदाचारों का उपदेश देनेवाले हैं श्रीमुनिगुव्रतप्रभों! सद्गुरुओं के पवित्र उपदेशामृत में मजन करनेवाले जो सज्जन अनन्त सुखवाले अद्वितीय स्वभाववाले निर्मल परिणामवाले अक्षुण्ण स्वरूपवाले अकुण्ठित जीवनवाले आपको प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

वे भव्य-भक्त लोग निस्मन्देह तीनों जगत्सँ सादर बन्दित और आनन्दित होते हैं। 'जैसा कार्य होनेवाला होता है-वैसे ही स्वरूपाधिरोवी असाधारण कारण भी पैदा हो जाते हैं' यह प्राकृतिक नियम है ॥ ३ ॥

श्रीनमि-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(पञ्चचामर-छन्दः)

नर्माश ! निर्मलात्मरूप ! सत्यरूप ! शाश्वतं,
परोर्ध्वसिद्धिसौधमूर्ध्नि सत्स्वभावतः स्थितम् ।

विधाय मानसाब्जकोश-देश मध्यवर्तिनं,

स्मरामि सर्वदा भवन्तमेव सर्वदर्शिनम् ॥ १ ॥

अनुवाद.— 'निर्मलात्मरूप !'—हे पवित्र आत्मस्वभाववाले विभो ! 'सत्यरूप'—हे सचे स्वरूपवाले स्वामी ! 'नर्माश !'—परीप-दुष्मनों का नमानेवाले अथवा भगवान के गर्भ में आने पर पर-गजाओंने नमन किया था ऐसे गुणवाले हे नमिनाथ प्रभो ! '—अविनाशी, 'परोर्ध्वसिद्धिसौधमूर्ध्नि सत्स्वभावतः

वैश्या के मत्पटल के प्रतिपादन करने के मर्त्य मत्पटल बनाता है ॥ १ ॥

दिव्यजि जीलकाल के समीप गीतनवाले हे संस्था !
 मर्त्यजि जैसे अनन्त ज्योतिषादे आपके दिव्य दर्शन से मिथ्या-
 वर्तनी ब्रह्म-योग आदि प्रमादी को बतानेवाली और दीर्घाय-
 वर्तनी अनन्त दिव्यजि रूप मेरी दुर्बुद्धि गरी के अंगे मत्पटल नर
 तंगी, और गंगा हृदय बचन की आज फिर गया ॥ २ ॥

हे ममिनाथ भगवन् ! भवोत्तर में मैं हिमा आदि दोषों से
 दूर और अन्य मत्पटल के मर्त्यजि बर्तों को पैदा करनेवाले मापारी
 देवताओं के मंगल-परिषय का निगरान करनेवाला और पुरान्त
 रूप में आपके ही शरण-मलों की सेवा करनेवाला बना रहूँ । यह
 मेरी मनोवाञ्छा आपके प्रमादमे तन्वान ही मफल हो ॥ ३ ॥

श्रीनेमि-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(उपजाति वृत्तम्)

विशुद्ध-विलानभृतां घरेण
 शिवात्मजेन प्रशमाकरेण ।
 येन प्रयासेन विनैव कामं
 विजित्य विक्रान्तनरं

‘प्रणाशंगना’-नष्ट हो गई। और ‘हृन्कजे’-हृदय कमन
 ‘विनिद्रता’-प्रफुल्लता ‘अभवत्’-पैदा हो गई ॥ २ ॥

निरस्तदोषदुष्टकष्टकार्यमर्त्यसंस्तवो,-
 भवे भवे भवत्पदाम्बुजैकसेवकः प्रभो ! ।
 भवेयमीदृशं भृशं मदीयचित्तचिन्तितं,
 तव प्रसादतो भवत्ववन्ध्यमेव सत्वरम् ॥ ३ ॥

अनुवादः—‘प्रभो!’-हे नमिनाथ प्रभो! ‘निरस्तदोष-
 दुष्टकष्टकार्यमर्त्यसंस्तवः’-हिंसा-आदि दोषों से दुष्ट और जन्म
 मरण के कष्टों को पैदा करनेवाले-मायावी देवताओं के परिचय
 तिरस्कार करनेवाला और ‘भृशं’-एकान्त रूपसे ‘भवत्पदाम्बु-
 जैक सेवकः’-आपके चरण कमलों की ही सेवा करनेवाला ‘भवे
 भवे’-भव २ में ‘भवेयं’-में होऊँ। ‘ईदृशं’-ऐसी ‘मदीय-
 चित्तचिन्तितं’-मेरे हृदय की इच्छा ‘तव’-आपकी ‘प्रसादतः’-
 महिम्नानी से ‘सन्वरं’-तत्काल ‘एव’-ही ‘अवन्ध्यं’-सकन
 ‘भवतु’-हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे पवित्र आत्म स्वभाववाले विभो! हे सबे सब
 वाले स्वामी! परीपहादि दुश्मनों को नमानेवाले हे नमिनाथ प्रभो!
 मादि अनन्त काल तक परमोच्च मुक्ति मन्दिर में निरञ्जन निराकार
 अजरामर आदि मत्स्वभावों में स्थित होनेवाले और लोकालोक
 भावों को यथावस्थित रूपसे देखनेवाले आपको हृदय कमन

ए. 'गिरिनामद्वारं'-गौरी (कार्तीयायार) देव में आये हुए
 किना पर्वत पर 'शम्भु'-नाम 'बे.कम-मुनिगुरु'-'कान्त
 ल.कल्याण. और निराणं कल्याणक.से युक्त 'दम'-चार महाव्रत
 ल.क.दीक्षा कल्याणक. को 'भेजे'-प्राप्त किया ॥ २ ॥

निःशेषयोगीश्वरमौलिरसं

जितेन्द्रियस्ये विहितप्रयत्नम् ।

तमुत्तमानन्द-निधानमेकं

नमामि नेमिं विलम्बद्विवेकम् ॥३॥

अनुवादः—'न'-उन 'निःशेष-योगीश्वर-मौलिरसं'-
 दक्षिणा-मन्य-अम्येय-अक्षय्य और अकिंचनता रूप यम, शेष-
 मन्त्रोप-श्लाघ्याय-तप और वीतगागप्रणिधान रूप नियम, पशामन-
 आदि आमनों को करने रूप कण, शामोच्छ्रयाम को शोकने रूप
 प्राणायाप, रूपादिनेहम विषयों में इन्द्रियोंका संहरण रूप प्रत्याहार,
 किरी प्येय विषय में चित्तकी स्थिरता रूप धारणा, इष्टदेव के विषय
 में एक धारा चित्तप्रवृत्ति रूप ध्यान, और ध्येयकार निरामन रूप
 मपाधि, ये योग के आठ अंगों की माधना करनेवाले समस्त योगी-
 त्रों में चूहापणि के जैसे 'जितेन्द्रियस्ये'-इन्द्रियों को जीतने में
 'विहितप्रयत्नं'-सम्यगुपायों को करनेवाले 'उत्तमानन्दनिधानं'-
 सर्वोच्छ्रय आनन्द के भण्डार 'एकं'-इन्द्रातीत समाधवाले 'विल-
 म्बद्विवेकं'-प्रमृद्दद्विवेकवाले 'नेमिं'-बाईसवें श्रीनिमिनाय भगवान्
 को 'नमामि'-प्रणाम करता हूँ ।

'गिरनारशैलं'—गौगष्ट (फाटीयावाह) देश में आये हुए
 न पर्यन्त पर 'शस्या'—जाकर 'कथाम्-मुक्तियुक्तं'—केवल
 न कल्याणक और निवारण कल्याणक से युक्त 'धर्म'—चार महाप्रव
 ण रूप-दीक्षा कल्याणक को 'वेजे'—प्राप्त किया ॥ २ ॥

निःशेषयोगीश्वरमौलिरत्नं

जितेन्द्रियत्वे विहितप्रयत्नम् ।

तमुत्तमानन्द-निधानमेकं

नमामि नेमिं त्रिलसद्विवेकम् ॥२॥

अनुवादः—'तं'—उन 'निःशेष-योगीश्वर-मौलिरत्नं'—
 दिग्मा-गन्ध-अस्नेय-मदन्त्य और अकिंपनता रूप यम, धीष-
 ज्ञोप-श्राप्याय-तप और धीतगगप्रणिधान रूप नियम, पद्मागन-
 आदि आगनों को करने रूप करण, सामोच्छ्राम को रोकने रूप
 प्राणायाम, रूपादि तैरंग विषयों से इन्द्रियोंका संहरण रूप प्रत्याहार,
 निर्मा ध्येय विषय में चित्तकी स्थिरता रूप धारणा, इष्टदेय के विषय
 में एक पाग चित्तप्रवृत्ति रूप ध्यान, और ध्येयाकार निर्माण रूप
 गमाधि, ये योग के आठ अंगों की साधना करनेवाले मयात योगी-
 त्तों में गृहामणि के जेमे 'जितेन्द्रियत्वं'—इन्द्रियों को जीतने में
 'विहितप्रयत्नं'—परमपुरुषार्थ को करनेवाले 'उत्तमानन्दनिधानं'—
 सर्वोच्छ्रष्ट आनन्द के मण्डार 'एकं'—इन्द्रियों का मयापवाले 'वि
 त्तद्विवेकं'—प्रस्पृग्दविवेकवाले 'नेमि'—सार्गवै धीनेमिनाय मगवा
 को 'नमामि'—प्रणाम करता है ।

अनुवादः—‘विशुद्ध-विज्ञानभृतां वरेण’—धर्मोपक्रम की विशुद्धिवाले विशिष्ट-मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान-मनःपर्यव ज्ञानवाले ज्ञानियों में क्षायिकभाव जन्य केवलज्ञानसे प्रधान-अथवा मामान्य केवलियों में तीर्थंकर नाम जन्य पुण्यं प्रकृति से प्रधानता-वाले ‘प्रशमाकरेण’—परम ज्ञान्ति के भण्डार ऐसे ‘जैन’-जिन ‘शिवात्मजेन’—यादवों के प्रधान समुद्रविजय महाराजा की पट्टगर्णी श्रीमती शिवादेवी के पुत्ररत्न श्रीनेमिनाथ भगवान् ने ‘विक्रान्तनरं’—मनुष्यों की और उपलक्षण से देवताओं की भी मान करनेवाले ‘कामं’—शब्द-रूप-रस-गन्ध और स्पर्श गुणवाले कामदेवको ‘प्रयामेन विना गन्ध’—विना प्रयत्न के ही ‘प्रकामं’—मय प्रकार से-आन्यन्तिक भाव से ‘विजित्य’—जीत कर ॥ १ ॥

विहाय राज्यं चपल-स्वभावं,

राजीमर्ती राजकुमारिकां च ।

गन्धा मल्लालं गिरनारशैलं,

भेजे वनं केवलमुक्तियुक्तम् ॥ २ ॥

अनुवाद.—‘चपलस्य भावं’—नश्वर परिणामवाले राज्य को ‘च’—श्रीर भोगकर्म के अभाव में ‘राजकुमारिकां’—श्रीउग्रसेन राजा की पृत्री राजकुमारी ‘राजीमर्ती’—पूर्व के आठ भयों से स्नेह मय विध्वनी-मुन्दर मरुपवाली श्रीमती मर्ती राजकुमारी को मगार्द मरुप हीवाने के घर में ‘विहाय’—त्याग कर ‘मर्तीम्’—आनन्द कां

जगत्प्रकाम-कामिनप्रदानदक्षमक्षनं,

पदं दधानमुद्यकैरकैतयोपलक्षितम् ॥ १ ॥

अनुरादः—‘प्रमादघर्जितं’—ज्ञानावरणीय दर्शनवरणीय
 शरीर और अन्तराय ये चार प्रकारके आत्मगुणपाती कर्म,
 रि बेदनीय-आयुष्य नाम और गोत्र ये चार अघाती कर्म इन
 ली-अघाती रूप आठों कर्मों के विपाक से पैदा होनेवाली अवस्था
 ज्ञे-प्रमाद से रहित, ‘दृषकीषवाग्मिपलात्मनः’—अपने पँतीम
 शक्तिप्रवचन से ‘जिनोऽग्नेघर्जितं’—बड़े भारी मेघों के
 शक्ति को जीतनेवाले ‘जगत्प्रकाम कामिन प्रदानदक्षं’—जगत्-
 तारी जीवों के अत्यन्त प्रिय इच्छितों को देने में दक्षतावाले
 ब्रह्मैः अक्षनं पदं दधानं’—उंचे लोकाग्र भाग में स्थित
 तीम लाख योजन प्रमाण विस्तारवाली स्फटिकरत्नमयी शश्वती
 शिला पर सादि अनन्तकालतक अविनाशी पदको धारण करने
 । ‘अकैःनघोपलक्षितं’ अवतार ग्रहणरूप माया से रहित ऐसे
 ।—उन ‘जिनं’ रागद्वेष को जीतनेवाले श्रीशंभुनाथ स्वामीका
 श—आनन्द के साथ ‘सदा’—हमेशा ‘ध्यामि’—धारण
 । हैं ।

सतामवद्यभेदकं प्रभूतसम्पदां पदे,

धलक्ष-पक्षसङ्गतं जनेक्षण-क्षणप्रदम् ।

जगत्प्रकाम-कामिनप्रदानदक्षमक्षतं,

पदे दधानमुद्यकैरेकतयोपलक्षितम् ॥ १ ॥

अनुवादः— 'प्रमादयजिनं' :- शानावरणीय दर्शनावरणीय
 और अन्तराय ये चार प्रकारके आत्मगुणयात्री कर्म,
 और बेदर्नीय-आयुष्य नाप और शोष ये चार अघाती कर्म इन
 चारों-अघाती रूप आठों कर्मों के विपारु से पैदा होनेवाली अवस्था
 विशेष-प्रमाद से रहित, 'स्यकीयवाग्वियलामनः' :- अपने पैंतीस
 गुणविशिष्ट प्रवचन से 'जिनोद्गमेधगर्जिनं' :- बड़े भारी मेघों के
 पर्वतों को जीतनेवाले 'जगत्प्रकाम कामिन प्रदानदक्षं' :- जगत्-
 निवासी जीवों के अत्यन्त प्रिय इच्छितों को देने में दक्षतावाले
 'उद्यकैः अक्षतं पदं दधानं' :- उंचे लोहाय भाग में स्थित
 ऐतलीस लाख योजन प्रमाण विस्तारवाली एकटि हरमयी शाश्वती
 किदरिला पर सादि अनन्तकालतक अविनाशी पदको धारण करने
 वाले 'अरेकतयोपलक्षितं' अवतार ग्रहणरूप माया से रहित ऐसे
 'तं' :- उन 'जिनं' रागद्वेष को जीतनेवाले श्रीशिवनाथ स्वामीका
 'मुद्रा' :- आनन्द के साथ 'सदा' :- हमेशा 'अपामि' :- शरण
 लाता हूँ।

सत्तामयथभेदकं प्रभूतसम्पदां पदे,

वलक्ष-पक्षसङ्गतं जनेक्षण-क्षणप्रदम् ।



मः' उनके बाद प्रपञ्चः 'सुखितागामिनः' माया के बन्धनों को तोड़ कर संसार के मषोंममाग-सुक्त प्रदेश में गमन करनेवाले को 'प्रभाप्रभास्वराः' मन्त्रिन् ज्योतिसे प्रकाशमान-लोका-शंकारामामी होजाने हैं। 'स्वल्पदं' तीनों काल में अपनी सत्ता को स्मनेवाले 'शुद्ध-बोध-वृद्धिलाभत्रं' पवित्र आत्म बोध की बनन वृद्धिस्वरूपलाम को देनेवाले 'तं' उन 'आश्वसेनि-देयदेयं'-शंकारमी के अधिपति श्रीअश्वसेन महाराजा के पुत्ररत्न देवाधिदेव श्रीपार्थनाथ स्वामी को 'उद्यमानमेन' बढते हुए चित्तके परिधामों से 'भजेयं'-में भजता हूँ ॥ ३ ॥

मायार्थ—पाती आपाती स्वरूपवाले आठ कर्मों के विपाक से पैदा होनेवाले विकारों से गहित स्वभाववाले, पंतीम गुणों से रिशिष्ट अतिशयवाले प्रवचन से पड़े भारी मेघों के गर्जारवों को जीतनेवाले, जगतवासी-जीवों के अत्यन्त प्रिय-इच्छितों को पूर्ण करने में पाण्डित्यवाले, शाश्वती-मिद्धशिला पर गादि अनन्त काल तक अविनाशी पदवाले, अवतार ग्रहणरूप मायासे गहित उन वीतरागी श्रीपार्थनाथ स्वामी का मैं आनन्द के साथ हमेशा शरण लेता हूँ ॥ १ ॥

मार्गानुसारि मजनों के पाप का नाशक, अनन्त सम्पत्तियों का स्थान, ज्ञानादि गुणों की फला वृद्धि हेतु-गुरु पक्ष के समान भव्यात्माओं के नेत्रों को आनन्द देनेवाला जिनका दिव्य-दर्श पापों का मर्दन करनेवाले देव-गुरु भक्ति कारक भद्रा सम्पन्न मनुष्य

रश 'वोपपगुणधारिणिः'—ज्ञानादि प्रधान गुणों के समुद्र
 परमनिबुनः'—उत्कृष्टमुक्त स्वरूपवाले, 'मर्षदः'—सब प्रकार
 शिष्टों को देनेवाले 'समस्तकर्मशान्तिनिधिः'—सम्पूर्ण आत्म
 कर्मियों के भण्डार 'सुर-नरेन्द्रकोटिभितः'—करोड़ों देवताओं
 के और मनुष्यों के स्वामियों से आसेवित 'जनातिसुखदायकः'—
 कल्याणियों को अत्यन्त सुख देनेवाले 'विगतकर्मवारः'—नष्ट
 शेषता हैं कर्म समुदाय जिनके ऐसे 'जिनः'—रागद्वेष को जीतने-
 लें 'सुमुक्तजनरङ्गमः'—भली प्रकार से छोड़ दिया हैं संसारी
 नों का संबंध जिनने ऐसे 'त्वं'—आप 'असि'—हैं ॥ १ ॥

जिनेन्द्र ! भवतोऽद्भुतं मुखमुदारविम्बस्थितं,

विकारपरिवर्जितं परमशान्तमुद्राङ्कितम् ।

निरीक्ष्य मुदितेक्षणः क्षणमितांऽस्मि यद्भाषनां,

जिनेश ! जगदीश्वरोद्भवतु मे सर्वदा ॥ २ ॥

अनुवादः—'जिनेन्द्र'—तीर्थंका नाम कर्म की पुण्य

से विराजित हुए हे तीर्थनाथ ! 'अद्भुतं'—अनिर्वचनीय

शला 'उदारविम्बस्थितं'—प्रसन्न कान्तिमान् 'विकारपरि

तं'—कामचेष्टाओं से मुक्त 'परमशान्तमुद्राङ्कितं'—मर्षोन्मुक्त

मुद्रा से विराजित 'भवतः'—आपके 'मुखं'—मुखकमल का

'निरीक्ष्य'—दर्शन करके 'मुदितेक्षणः'—प्रसन्न लोचनशला मे

'क्षणं'—क्षणमात्र के लिये 'यद्भाषनां'—प्रिय प्रवृत्त भाषना

के दुःख समूह को हमेशा के लिये नाश कर देता है ॥ २ ॥

जिन की महिरवानी प्राप्त करके मन्व्यजन संसार की बड़ी र समृद्धियों को भोगनेवाले होते हैं और क्रमशः माया के बन्धनों को तोड़ कर मोक्ष में गमन करनेवाले और सच्चिद् ज्योति से प्रकाशमान होजाते हैं । तीनों काल में अपनी सत्ता को रखनेवाले, बुद्ध बोध की अनन्त वृद्धि स्वरूप लाभ को देनेवाले, उन अश्वसेन महाराजा के पुत्ररत्न देवाधिदेव श्रीपार्श्वनाथ स्वामी को मैं बढते हुए शुभ परिणामों से भजता हूँ ॥ ३ ॥

श्रीमहावीर-जिन-चैत्यवन्दनम् ।

(पृथ्वा छन्दः)

वरेण्यगुणवारिधिः परमनिवृतः सर्वदः—

समस्तकमलानिधिः सुरनरेन्द्रकोटिश्रितः ।

जनातिसुखदायको विगतकर्मवारो जिनः

सुमुक्तजनसङ्गमस्त्वमसि वर्द्धमानप्रभो ! ॥ १ ॥

अनुवादः—'वर्द्धमानप्रभो !'—क्षत्रिय कुण्डनगराधिपति सिद्धार्थ महाराजा की राज्य समृद्धि को बढानेवाले विशुला महाराजी के पुत्ररत्न गुणनिष्पन्न श्रीवर्द्धमान नामवाले हे प्रभो ! * 'सर्वद'

*—'सर्वदा' पद से 'सर्वदः' पद ठीक अर्थता है। यहाँ दोनों पदों का संगत अर्थ कर दिया है। विद्वान् विचारें। (मनुयादिका)

पेशा 'श्रेष्ठगुणवारिधिः'—ज्ञानादि प्रधान गुणों के समुद्र
 'परमनिवृत्तः'—उत्कृष्टमुक्त स्वरूपवाले, 'सर्वज्ञः'—सब प्रकार
 के शिष्टों को देनेवाले 'समस्तकर्मशान्तिः'—सम्पूर्ण आत्म
 कर्मियों के भण्डार 'सुर-नरेन्द्रकोटिधितः'—सरोइों देवताओं
 के और मनुष्यों के स्वामियों से आसेवित 'जनातिसुखदायकः'—
 कल्याणार्थों को अत्यन्त सुख देनेवाले 'विगतकर्मधारः'—नष्ट
 रोगपा है कर्म समुदाय जिनके ऐसे 'जिनः'—रागद्वेष को जीतने-
 वाले 'सुमुक्तजनमङ्गलः'—मली प्रकार से छोड़ दिया है संसारी
 जनों का संबंध जिनने ऐसे 'स्व'—आप 'अभि'—हैं ॥ १ ॥

जिनेन्द्र ! भवतोऽद्भुतं मुखमुदारविम्बस्थितं,

विकारपरिवर्जितं परमशान्तमुद्राङ्कितम् ।

निरीक्ष्य मुदितेक्षणः क्षणमितांश्चिन्म यद्भावनां,

जिनेश ! जगदीश्वरोऽह्यतु मे सर्वदा ॥ २ ॥

अनुवादः—'जिनेन्द्र'—तीर्थकार नाम कर्म की दुष्प

मरति से विराजित हुए हैं तीर्थनाथ ! 'अद्भुतं'—अनिर्वचनीय

स्वरूपवाला 'उदारविम्बस्थितं'—प्रशस्त कान्तिमान् 'विकारपरि

वर्जितं'—शामपेदाओं से मुक्त 'परमशान्तमुद्राङ्कितं'—मरौत

पान्त मुद्रा से विराजित 'भवतः'—आपके 'मुख'—मुखद्वारा

'निरीक्ष्य'—दर्शन करके 'मुदितेक्षणः'—प्रमत्त होकर

'क्षणं'—क्षणमात्र के लिये 'यद्भावनां'—प्रित्त अर्थ



'बोध्यगुणवार्तिधिः'—ज्ञानादि प्रधान गुणों के समुद्र
 'समनिकुनः'—उत्कृष्टमुक्त स्वरूपवाले, 'सर्वत्रः'—सब प्रकार
 'दृष्टिओं को देनेवाले 'समस्तकर्मदानिधिः'—सम्पूर्ण आत्म
 'कर्मियों के मण्डार 'सुर-नरेंद्रकोटिश्रितः'—करोड़ों देवताओं
 के और मनुष्यों के स्वामियों से आसेवित 'जनानिसुखदायकः'—
 कल्याणियों को अत्यन्त सुख देनेवाले 'विगतकर्मवारः'—नष्ट
 हो गया है कर्म समुदाय जिनके ऐसे 'जिनः'—रागद्वेष को जीतने-
 'समुक्तजनमङ्गलः'—भली प्रकार से छोड़ दिया है संसारी
 'तुम्हारे संबंध जिनने ऐसे 'त्वं'—आप 'असि'—हैं ॥ १ ॥

जिनेन्द्र ! भवतोऽद्भुतं मुखमुदारविम्बस्थितं,
 विकारपरिवर्जितं परमशान्तमुद्राङ्कितम् ।
 निरीक्ष्य मुदितेक्षणः क्षणमितांशमि यन्नावनां,
 जिनेश ! जगदीश्वरोऽभवतु मे सर्वदा ॥ २ ॥

अनुवादः—'जिनेन्द्र'—तीर्थंका नाम कर्म की पुण्य
 गति से विराजित हुए हे तीर्थनाथ ! 'अद्भुतं'—अनिर्दिनीय
 स्वरूपवाला 'उदारविम्बस्थितं'—प्रशस्त कान्तिमान् 'विकारपरि-
 वर्जितं'—आपयेताओं से मुक्त 'परमशान्तमुद्राङ्कितं'—सर्वोत्कृ-
 शान्त मुद्रा से विराजित 'भवतु'—आपके 'मुख'—मुखकर्म
 'निरीक्ष्य'—दर्शन करके 'मुदितेक्षणः'—प्रमत्त होकर
 'क्षणं'—धणपात्र के तरे 'यद्भावना'—विश्व अर्थ मा





मगर विविध छन्द करे गये हैं । लौकिक छन्दों में गण आठ प्रकार के माने गये हैं ।

म-य-र-म-न-ज-भ-न-मंज्राइछन्दस्पष्टौ गणान्निषणाः स्युः ।

यगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण, और गणमंज्रा वाले ये आठ गण छन्दमें तीन २ वर्ण के माने जाते हैं इन निम्नानुसार इस प्रकार हैं ।

ॐ मर्धगुरु मः कथितो,

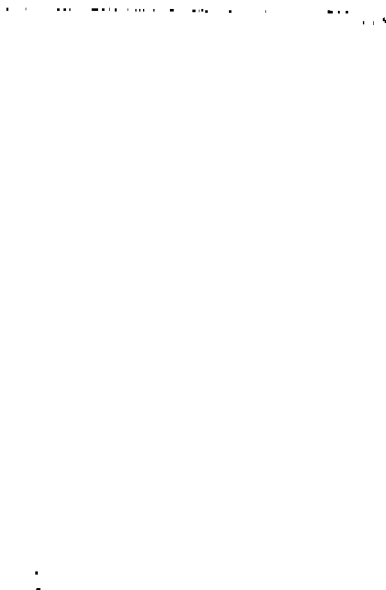
भजसा गुर्वादि मध्यान्ताः ।

छन्दासि नः मर्धलघु—

पैरता, लघ्यादि मध्यान्ताः ॥

मगण में तीनों वर्ण गुरु होते हैं—५५५—भगण में आदि गुरु होता है—५११—जगण में मध्य वर्ण गुरु होता है—१५१—रगण में अन्त्य वर्ण गुरु होता है—११५—नगण में सब वर्ण लघु होते हैं—१११—यगण में आदिवर्ण लघु होता है—१५५—रगण में अन्त्य वर्ण लघु होता है—५१५—तगण में अन्त्य वर्ण लघु होता है—५५१—काव्य की आदि में प्रयोग करनेवाले कविकों लिये मगण-लक्ष्मी को, यगण-वृद्धि को, रगण-मृत्यु को, सगण-प्रयाण को, तगण-शून्यता को, जगण-रोगों को, भगण-यश को और नगण-मोद को देता है । प्रभुत चैत्यवन्दन चतुर्विंशतिका का प्रारम्भ मगण में

ॐ छन्दः कौस्तुभे ।



राद के मात्रवै-अर्थात् उच्चीसवै वर्ण पर यति-विराम हो । ऐसे चार वर्णों वाले उस छन्द का 'शार्दूलविक्रीडित' नाम है ।

यवः	वगणः	जगणः	वगणः	मगणः	तगणः	गुरुः
५.५.५.	१.१.५.	१.५.१.	१.१.५.	५.५.१.	८.५.१.	५.

१-सङ्गत्या-नतमी-तिनिर्ज-रधर १२ भाञ्जिण्यु-मौलिप्र-भा ७
 × × × × × × × × × × × × ×

१-रत्वाणां-कुरव-धनेत्र-लधर-१२ सर्वाङ्गि-सम्परक-रम् ७

दीर्घ संयोगपरं तथा युतं, व्यञ्जनान्त-मूपमान्तम् ।
 सानुस्वारं च गुरुं, कचिद्वसानेऽपि लघ्वन्त्यम् ॥

अर्थ—दीर्घस्वर, संयोग है पर जिसके ऐमा वर्ण, ध्रुत स्वर, अनान्त वर्ण, विसर्जनीय-जिह्वामूलीय आदि उष्मान्त वर्ण, [स्वार वाला स्वर, ये सब वर्ण गुरु कहे जाते हैं । कहीं २ अन्त आया हुआ लघु अक्षर भी गुरु माना जाता है ।

---०-(०)-०---

द्वितीय-श्रीअजित-जिन-चैत्यवन्दने

(मालिनी)

सूत्रम्—मालिनी नौ र्प्यो य् ॥ ७ । १४ ।

वृत्तिः—यस्य पादे मगणां, मगण -वगणो वगण-ध्र (१११, १११, १५५, १५५, १५५,) अथति तद्गुणं 'मालिनी' नाम । पूर्वैव यतिः—

छन्दः परिचयः

वृत्तिः-भाषन्ती-इति धनन्तरोक्तौ इन्द्रयज्ञोपेन्द्रयज्ञयोः-पारा
 इ। तौ यदा विद्वत्पेन यथेष्टं मयतस्मदा उपजातयः प्रन्तार-
 ना चतुरंश प्रकारा जायन्ते ।

अर्थ-त्रिम श्लोक में इन्द्रयज्ञा और उपेन्द्रयज्ञा के चरण
 यथेच्छा से मिश्रण किये गये हों, उस समय प्रन्तार रचाना से
 दोह प्रकार के 'उपजाति' छन्द होते हैं। पदान्त में यति होती है
 म चैत्यवन्दन में पहला श्लोक-प्रमा-दूमा-कीर्ति और तीगण
 शुद्धि-संग्रा विशिष्ट उपजाति छन्द है। इन्द्रयज्ञा के चरण में
 अन्त्यलघु तगण, मध्य गुरु जगण, और अन्त में दो गुरु आते हैं।
 उपेन्द्रयज्ञाके चरण में जगण-तगण-जगण और अन्त में दो
 गुरु आते हैं।

(उपेन्द्रयज्ञा)			
जगण	तगणः	जगणः	गु०
१.५.१.	५.१.१.	१.५.१.	५
विद्युत्	विद्याम	भृतांब	ब

(इन्द्रयज्ञा)			
तगणः	जगणः	गु०	गु०
५.५.१.	१.५.१.	५	५
वेदप्र	वाह्येव	विदेव	मम्



छन्दः परिचयः

S. I. I. I. S. I. S. S. I. I. I. S. I. S
 दिव्यगुण धारकं भव्यजन तारकम्
 I. I. I. I. I. S. I. S. I. I. I. S. S.
 उदितमनि धारकं सुहृत्कास्तम्

एकोनविंशश्रीमल्लीजिन चैत्यवन्दने

(गीत)

यह गीत भी मात्रिक-छन्द विशेष ही है इसके पाँचे तीसरे
 पद में चारवीं २ और दूसरे चौथे चरण में शर्मा २ मात्राएँ होती
 हैं। यति लयानुसार होती है।

S. I. I. S. I. I. S. I. S. I. I. I. I. I. S.
 कुम्भसमुद्र धरं महाकाशगुणधारकं
 S. I. I. S. I. I. S. I. I. I. I. S. I. I. S.
 मस्तित्रिमोक्षमहेष! जयजय विश्वपते!

विंश श्री मुनिसुव्रतजिन चैत्यवन्दने

(नेपथ्य)

यह नेपथ्य छन्द भी मात्रिक है। इसके प्रथम चारपद में
 मात्राएँ होती हैं; और यति लयानुसार।

S. I. S. I. S. I. I. S. I. I. S. I. S.
 जलमयं तनयधर्मसमुद्रजगत्पते!





नपालीम गणधर सहित, आपो शिवपुर स्वाम ॥ ३ ॥
 चौमठ सहम सुमाधु, च्यार सय पासठ सहस ।
 भ्रमणी भायक दोय लाख, ऊपर चौ सहस ॥ ४ ॥
 च्यार लाख तेरे सहस, भायकणी सार ।
 किनर कंदर्पागुरी, नित सानिधिकार ॥ ५ ॥
 अदहिय सय परिवारमुंए, माम स्वमण तप जाण ।
 प्रभु सीधा ममेतगिरि, करो संघ कल्याण ॥ ६ ॥

॥ श्री शान्ति जिन चैत्यवन्दन ॥

मोलम जिनवर शान्तिनाथ, सोरन सम काय ।
 विषसेन अचिरा गुतन, मृग लांछित पाय ॥ १ ॥
 चालीम धनुष प्रमाण, उष जगु देह विराजै ।
 आयु बछर लाख एक, जलधर धुनि गाजै ॥ २ ॥
 छद्म भक्त संजम लियोए, इधनापुरबर नाम ।
 निज गणधर छतीम जुत, आपो शिवपुर स्वाम ॥ ३ ॥
 चामठ सहम सुमाधु, छ मय बलि इकसठ सहस ।
 मापणी भायक दोय लाख, बलि नेउ सहस ॥ ४ ॥
 सहस प्रपाणुं तीन लाख, भायकणी सार ।
 निर्वाणी गुरी गरुड यक्ष, नित सानिधिकार ॥ ५ ॥
 नव सय मुनि परिवारमुंए, माम स्वमण तप जाण ।
 प्रभु सीधा ममेत गिरि, करो संघ कल्याण ॥ ६ ॥

छद्म मन संजम लियोए, हथिणाउरपुर ठाम ।
 निज गणधर तेतीस जुत, आपो शिवपुर स्वाम ॥ ३ ॥
 माधु महम पचास मान, साठ सहस भमणी ।
 महम चौरासी एक लाख, भावक गुमतिधणी ॥ ४ ॥
 धारणिगुरि पक्षेश्वर, नित मानिधिकार ॥ ५ ॥
 एक महम मुनि माधसुंए, माम समण तप जाण ।
 प्रभु सीषा ममेत गिरि, फरो रांघ कल्याण ॥ ६ ॥

॥ श्री मल्लि जिन चैत्यवन्दन ॥

उगणीमम श्री महिनाथ, नील वरण काय ।
 देवी प्रभायती गुंभराय, नंदन जिनराय ॥ १ ॥
 कल्म लंडन पणवीग धनुष, तनु उष पिडाण ।
 महम पचारन पर्य मान, जगु आय गुजाण ॥ २ ॥
 अहम भमे प्रत लियोए, नगरी मिधितानाम ।
 गणधर अहावीम जुत, आपो शिवपुर स्वाम ॥ ३ ॥
 जगु शालीम हजार माधु, पंचारन महम ।
 माधुनी भावक एक लाख, त्रयामी महम ॥ ४ ॥
 तीन लाख निजर महम, भावकनी मार ।
 गुर बुधेर धरणप्रिया, नित मानिधिकार ॥ ५ ॥

अंबादेवि गोमेघ मुर, नित सानिधिकार ॥ ५ ॥
 मुनि पणसय छत्तीसमुंण, मासखमण तप जाण ।
 प्रभु सीधा गिरनार गिरि, करो संघ कल्याण ॥ ६ ॥

॥ श्रीपार्श्व जिन चैत्यवन्दन ॥

श्री अश्वसेन नरेश नंद, वामा जमु मात ।
 पन्नगलांछन पार्श्वनाथ, नील वरण गात ॥ १ ॥
 अति सुंदर जिनराज देह, नव हाथ प्रमाण ।
 वरस एक सौ मान आयु, जमु निरमल नाण ॥ २ ॥
 अट्टम तप संजम लियोए, नयरि वणारसि नाम ।
 गणधर दस परिवार युत, आपो शिवपुर स्वाम ॥ ३ ॥
 मोलह महम मुनि जाम मीम, अडतीम महम ।
 श्रमणी श्रावक एक लाख, चौमटि महम ॥ ४ ॥
 त्रिणलख गुणचालिम महम, श्रावकर्णी मार ।
 पार्श्व यक्ष पद्मावती, नित सानिधिकार ॥ ५ ॥
 तेतीम मुनि परिचारमुंण, माम म्मण तप जाण ।
 प्रभु सीधा ममेत गिरि, करो संघ कल्याण ॥ ६ ॥

॥ श्रीवर्द्धमान जिन चैत्यवन्दन ॥

जय २ श्री जिन रद्धमान मोवन मम शन ।
 लंछन मिट्ठमंणाय । वशय मत्त भाव ॥ १ ॥

धरम धनुत्तर आउ, देह कर मन प्रमाण ।
 रिषभादिक मय जागु पंग, इहनाक गुजाण ॥ २ ॥
 छट्ट भन मंजम लियोण, कुंडनापपुर ठाम ।
 गणधर इम्पारे महित, आपो शिवपुर स्वाम ॥ ३ ॥
 चउद महम मुनि स्वामि नीम, छठीम महम्म ।
 धमणी धावक एक लाख, गुण माट महम्म ॥ ४ ॥
 तीन लाख शुभाविका पलि, महम अटार ।
 गुर मातंग सिद्धायिका, नित मानिधिकार ॥ ५ ॥
 एकाकी पावापुरीय, छट्ट भन गुह क्षाण ।
 प्रभु पटुता अमृत पदे, यरो संघ कल्याण ॥ ६ ॥

॥ अथ प्रदाग्नि ॥

ऋषभादिक चौवीम देव, जिनगज प्रधान ।
 मात पिता लीछन वण, धपणादि विधान ॥ १ ॥
 मय अटार छप्पन मर्म, गुदि जेट विहाण ।
 दक्षिण देश नागपुर, तिथि तेरम जाण ॥ २ ॥
 धोजिमभक्ति पमात्तर्थाण, इम वणव्या गुजाण ।
 वाचक अमृत धर्म गणि, सीम क्षमा कल्याण ॥ ३ ॥

इति श्री चतुर्विंशति जिन नमोः ॥



परिशिष्ट १ - -

॥ अहं नमः ॥

अनेक ग्रन्थनिर्माता-सुविदितशिरोमणि-प्रातःस्मरणीय-पूज्येश्वर
महामहोपाध्याय श्री श्री १००८ श्रीमन् क्षमारण्याण
गणितविता गंगूत-—

जिन-चेत्यवन्दन चतुर्विंशतिका

१—श्रीश्रावभजिन-स्तुतिः ।

(१)

धीमदृषम ! गर्वित ! इषभाङ्ग ! सुषर्णश्च ! ।
जय देवाधिदेवार्त्वि ! नाभिगजेंद्रनन्दन ! ॥

(२)

पृगायादी त्वया येन, ज्ञानदत्त-पत्नय यत् ।
जनन्या परदेवाया पारयन जटय वृत्तम् ।

२—श्रीआर्जुनाजन-स्तुतिः ।

(१)

अर्जुनार्जुनायन शन नाभयन नाभयन
जितरात्रु-परीषात्-इषय वनवा-दवा ।

५—श्रीसुमतिनाथ-स्तुतिः ।

(१)

मेघामिध-धरित्रीश-तनयो मङ्गलप्रदः ।
क्रौञ्चलक्षण-भृद्देव,-मरीचिमङ्गलांगजः ॥

(२)

मत्स्यं सुमति-नाथेशः, सुमतिं तनुतात्तमां ।
भविनां पुण्य-कर्तृणां, स्वर्ग-सौख्यावलिप्रदाम् ॥

६—श्रीपद्मप्रभ-स्तुतिः ।

(१)

मुनीनापुत्र ! सन्कोक-नदद्रुतिपराधर ! ।
धरामिधनृपोद्भूत ! पद्मलक्ष्मणधारक ! ॥

(२)

मवाग्धौ भव संकीर्णै, दुस्तरे पततां नृणां ।
शायाय मततं देव, ! पद्मप्रभ ! जिनेधर ! ॥

(< >)

७—श्रीसुपार्श्व-स्तुतिः ।

(१)

भीगुपार्श्वामिधो देवः, पृथ्वीजः स्वरितकाङ्क्षभृत् ।
प्रतिष्ठ-नृप-संज्ञात-धामीकरकरो दिनः ॥

(२)

समुद्र इव गंभीरः, कर्मणां छेदने परः ।
यः सार्व्वः परमब्रह्म, स्तं नौमि सदा विभुम् ॥

८—श्रीचन्द्रप्रभ-स्तुतिः ।

(१)

चन्द्रप्रभप्रभो ! कान्त-चन्द्रलक्षण-संपुत ! ।
तमापति-च्छविज्ञान,-तमोव्यूह-विनाशन ! ॥

(२)

संसार-जलधेर्नाथ ! महसेन-नृपोद्भव ! ।
लक्ष्मणापुत्र ! मां स्वामि-न्नव केवल-बोधभृत् ! ॥

९.—श्रीसुविधिनाथ-स्तुतिः ।

(१)

* संस्तुतो यो ददान्वाशु, सुगमुर-नरेश्वरैः ।
सुविधिर्वाञ्छितं शर्म,- सुग्रीव-नृप-नन्दनः ॥

(२)

यम्यामीजननी गमा माननीया दिवौकमाम् ।
मान-मुक्तोऽवदातो यो-ऽप्यायो मकर-लालितः ॥

१०—श्रीशीतलनाथ-स्तुतिः ।

(१)

* श्रीमच्छीतलनाथेश ! नन्दादरथात्मज ! ।
भाम्यसुवर्णवदेह ! श्रीयत्याद्वाङ्-घातक ! ॥

(२)

त्वदीप-चरणाम्भोज-सेवकानां षष्ठभृताम् ।
प्राक्कृतं वृजिन-च्युतं, दुष्टं संभिन्दि हे विभो ! ॥

११—श्रीश्रेयांसनाथ-स्तुतिः ।

(१)

विष्णुवंशेऽर्कवरेवो, विष्णु-पुत्रो हिरण्यभः ।
श्रेयोवृद्धिकरोऽजसं, गङ्गिलम्बनभृजिनः ॥

(२)

हत्या कर्मरिपून् मार्परः, धेपामः धेपमः गह ।
* पर ज्ञानमयेन रवं, महानन्द-पदम् ॥

* ये वी श्रोत्रकः ध्यामरवाथे ह । * पर ज्ञान-भय-रम ! इति
तोदे विदिते श्रोत्रार्थो भवति स्पष्टः ।

१४—श्रीअनन्तनाथ-स्तुतिः ।

(१)

हेम वर्णस्य पुत्रस्य, सुयशः- सिंहमेनयोः ।
देवस्य श्येन-चिन्हस्य, पर्यान्त-गुणोदधेः ॥

(२)

इन्द्रादयोऽपि यस्यान्तं, गुणानां लेभिरे नदि ।
अनन्तस्य गुणास्तस्य, धमो यवतुं नरः फयम् ॥

१५—श्रीधर्मनाथ-स्तुतिः ।

(१)

सुयता-पुत्र ! यज्ञाङ्ग ! भानुवंशार्क तपिभः !
फनक-प्रभ सर्वत्र ! धर्मनाथामिषेधर ! ॥

(२)

तत्रागोऽपि पुत्रधारी, भूतले या-यशोरता ।
अनुत्तरफलाः मन्ति, मतां मगतयो वि दि ॥

१६—श्रीशान्तिनाथ-स्तुतिः ।

(१)

विधत्तेन धर्माज्ञ-नन्दन मृगतश्मण्डल ।
आपिरेष गुण्याङ्ग, बलपामि जितेधम ।

(२)

प्रवर-चन्द्र-लक्षण-संपुतं, * मुनिगतं गुणतं जननायकः ।
नमत शीतलनाथमिमं जना, जगति जीवनदानदायणम् ॥

११—श्रीश्रेयांस-स्तुतिः ।

(१)

नमोऽस्तु ब्रह्मरूपाय, सर्वदा सर्व-दर्शिने ।
वीतराग स्वरूपेण, सिद्धावस्थामुपैयुषे ॥

(२)

श्रीमते विष्णु-पुत्राय, विश्वमित्राय शंभवे ।
धेयसे तीर्थनाथाय, परमानन्द-दायिने ॥

१२—श्रीवासुपूज्य-स्तुतिः ।

(१)

पूर्णेन्दु-मन्त्रिमं सम्यग्, वीक्ष्य ते मुखमीश्वर ! ।
भजन्ति जन्तुपदानि, विकाशमिदमद्भुतम् ॥

(२)

संमारांबुनिधेर्नाथ ! दुस्तरान्मां समुद्धर ।
वसुपूज्यान्मज्ज श्रीमन् ! वासुपूज्य-जिनेश्वर ! ॥

* द्वितीयेऽशोके भन्तिमा पदत्रयी वृद्धिता पूर्वपुस्तके, ततो-
नव्यात्र रक्षिता ।

१३—श्रीविमलनाथ-स्तुतिः ।

(१)

विशोष्य शुद्ध बोधेन, कर्म-जाल-मलीमसम् ।
चेतनं पुण्यरूपः सन्, प्राप्तवान् विमलाभिधाम् ॥

(२)

कृतवर्म-कुलोत्तमः, सर्व-कल्याण-जन्मभूः ।
× भूयात्कल्याणधामात्मा, स श्यामेयो यतिर्मम ॥ .

१४—श्रीअनन्तनाथ-स्तुतिः ।

(१)

अनन्त-शीर्ष-संपन्न-मनन्त-ज्ञान-दर्शनम् ।
अनन्त-चारु-स्वारिध-पनन्त कमलावृतम् ॥

(२)

अनन्त भव्य-संश्लेष-मनन्तं परमेश्वरम् ।
नयामि सर्वज्ञानन्तं, निजानन्तार्द्धिं सिद्धये ॥

१५—श्रीधर्मनाथ-स्तुतिः ।

(१)

यमीशं श्रीहृद्य दंभोलि-मोक्ष-भूष-जयोपतम् ।
सादास्प्यं कर्तुंकामो वा, शीभिरे लांठनच्छलात् ॥

× द्वितीय श्लोकोन्मेषार पुगे एवं पुरतटे बुद्धित नव्ये किं

(३)

गोःने धर्मगणितेभ्यः, सुखाः सुखाङ्गाः ।
 वा सुखात् परिवा वा, आश्रमाधीकृत्युति ॥

१६ -- श्रीगान्धिनारायण-स्तुतिः ।

(१)

धर्मं परिर्णनात्, मया ते मया मया कृतम् ।
 भूषणैर्नाति निर्दिष्टे, तस्मात् तस्मात्पुत्रः ॥

(२)

निर्मिताद्यान् निर्माणं, शान्तेः शान्ति निर्माणम् ।
 देहि मे दर्शनं दिव्यं, मया मयाद्विधायकम् ॥

१७ -- श्रीकृष्णनाथ-स्तुतिः ।

(१)

प्रसाप्य मारुतौमन्वं, मरुतं च यः प्रभुः ।
 वाद्यान्त-प्रभेदेना जैषीरिविध विद्विषः ॥

(२)

मोक्ष्य शरवरः शूरः, प्रभवः प्रभुताम्पदम् ।
 महानन्दप्रदो भूषात्, कृष्णनाथो जिनाथिवः ॥

१८—श्रीअरनाथ—स्तुतिः ।

(१)

दित्वा मावय-कर्माणि, जित्वा सर्वेन्द्रियाणि च ।
कृत्वा चिभं निजायभं, भूतथा मद्गति-भाजनम् ॥

(२)

अरनाथ-जगत्पार्थ, ये सज्जित शुभार्थिनः ।
शामुवन्ति सुगुणधानि, सर्व सात्त्विकानि ते जनाः ॥

१९—धीमहिर्जनाथ—स्तुतिः ।

(१)

लाभदान-व्यपदेशेन, धं निषेधे जगत्प्रियम् ।
शामदः शान्त-बुद्धोऽपि, मत्त्वा सर्वार्थं दापयद् ॥

(२)

स धीमहिर्जिनार्थात्तः, सुवार्थी स माधित
कृपाप्रदायणः शान्त, शान्तान्ता भवसाविधेः

२०—धीमुद्यतनाथ—स्तुतिः

(१)

वदन्तारममयेन सविद्येन स्वरा दिन
देहाह्वान निराह्वये समधु वे ति नाण

(२)

मोज्यं धर्मपतिर्धर्मः, सुव्रतः सुव्रताङ्गजः ।
मां पुनातु पवित्रात्मा, चारु चामीकर घृति ॥

१६—श्रीशान्तिनाथ-स्तुतिः ।

(१)

अद्भुतं चरितं नाथ ! भवतो मय-भेद-कृत् ।
मृगाङ्गेनापि निर्दग्धे, यत्त्वया कुमुमायुधः ॥

(२)

⊗ निर्मिताशान्त-निर्णाशं, शान्ते ! शान्ति निकेतनम् ।
देहि मे दर्शनं दिव्यं, भव्य-संपद्धिधायकम् ॥

१७ -- श्रीकुन्धुनाथ-स्तुति ।

(१)

अवाप्य मार्वभौमत्वं, सर्वज्ञत्वं च यः प्रभुः ।
बाह्यान्तर-प्रभेदेना जैपीविविध विद्विषः ॥

(२)

मोज्यं शरवरः शूरः, प्रभवः प्रभुताम्पदम् ।
महानन्दप्रदो भूयात्, कुन्धुनाथो जिनाधिपः ॥

(२)

मोक्ष्यं घर्मपतिर्घर्मः, सुव्रतः सुव्रताङ्गनः ।
मां पुनातु पवित्रात्मा, चारु चामीकर-घृति ॥

१६—श्रीशान्तिनाथ--स्तुतिः ।

(१)

अद्भुतं चरितं नाथ ! भवती मय-भेद-कृत् ।
मृगाङ्गेनापि निर्दग्धे, यत्त्वया कुसुमायुधः ॥

(२)

❀ निर्मिताशान्त-निर्णाशं, शान्ते ! शान्ति निकेतनम् ।
देहि मे दर्शनं दिव्यं, भव्य-संपद्धिघायकम् ॥

१७ --श्रीकुन्धुनाथ--स्तुति ।

(१)

अवाप्य मार्वभौमत्वं, सर्वज्ञत्वं च यः प्रभुः ।
बाह्यान्तर-प्रभेदेना-जैपीविविध विट्पिपः ॥

(२)

मोक्ष्यं शरवरः शूरः, प्रभवः प्रभुतास्पदम् ।
महानन्दप्रदो भूयात्, कुन्धुनाथो जिनाधिपः ॥

(२)

तदिममसृणीभूतं, चित्तमुत्तुंग भावनम् ।
मां विधेहि गुणाधानं, मुनिसुव्रत ! सुव्रतम् ॥

२१—श्रीनामिनाथ—स्तुतिः ।

(१)

विजयेश्वर- भूमीश, वंशवाद्धिं विवर्द्धनम् ।
शीतच्छायमिवातुच्छ-पङ्क-भूच्छाय-मर्दनम् ॥

(२)

जित्वरं घोरकर्माणि, वरेण्यं पुण्य-दर्शनम् ।
नमीशं जगतामिष्टं, द्रष्टुमिच्छामि सत्वरम् ॥

२२—श्रीनेमिनाथ—स्तुतिः ।

(१)

अपार-महिमां मोधि-ब्रह्मचर्यैक-चेतसा ।
मन्मथो मथितो येन, शिशुत्वेऽपि सुरोचितं ॥

(२)

सोऽयं श्रीनेमि-सर्वज्ञो, हरिवंश-विभूषणः ।
सेव्यतां शिव-संपर्यै, सर्वदा गनदूषणः ॥

२३—श्रीपार्श्वनाथ—स्तुतिः ।

(१)

यस्य पादाङ्गुल-स्पर्शा-द्रव्याभूर्णीर्धमुलमम् ।
नागोऽभूत्प्राग-देवेन्द्रो, यदीय-वचन-श्रुतेः ॥

(२)

नरय देवाधिदेवस्य, पार्श्वनाथजिनेजितु ।
पार्ष्णं सर्वं गौरुपाणां, पार्ष्णं दारुणं मम ॥

२४—श्रीश्रीर जिन-स्तुतिः ।

(१)

विश्वलोक मनोहारि-प्रातिहार्य विराजितः ।
प्रतीक्ष्यः परमैश्वर्य भूता भृशिवदम्बकैः ॥

(२)

वर्द्धमानो विदुदधीः, समामशोपशोचः ।
विषेक-भाजनं सन्धि, करोतु ज्ञान-दानः ॥

(३)

इत्थे अतुर्विस्तारि-तीर्थपाणा, सुबोधव्योदितःकरो २ ।
जिन पर्वनामस्तधर्म रोवि शमादि-कन्याद दिग्गदे ॥



